ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 31 मई 2026 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार, 31 मई 2026 से 06 जून 2026

ज्येष्ठ शु. 15 ● वि० सं०–2082 ● वर्ष 67, अंक 22, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 202 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1–12 ● मूल्य – 5/– रु. ● वार्षिक शु. 300/– रु.

डी.ए.वी. सैक्टर-8, पंचकूला में 'नो नशा नेशन' अभियान पर आयोजन

आर्य युवा समाज द्वारा "नो नशा नेशन" विषय पर एक आयोजन डी.ए.वी. वरिष्ठ माध्यमिक मॉडल स्कूल, सेक्टर–8, पंचकूला में किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ दीप प्रज्वलन से हुआ। जिसकी अध्यक्षता डीएवीसीएमसी के उपाध्यक्ष न्यायमूर्ति प्रीतम पाल जी ने की।

न्यायमूर्ति प्रीमतपाल जी ने अपने आशीर्वचन में आर्य युवा समाज एवं डी.ए.वी. संस्थाओं द्वारा समाज में नैतिक मूल्यों एवं नशामुक्ति के लिए किए जा रहे प्रयासों की सराहना की।

"नो नशा नेशन" अभियान पर एक वीडियो दिखाई गई, जिसमें युवाओं में बढ़ती नशे की प्रवृत्ति पर चिंता व्यक्त की गई।

आर्य युवा समाज के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री योगी सूरी जी की उपस्थिति मुख्य आकर्षण बनीं। उन्होंने कहा कि नशा केवल व्यक्ति को ही नहीं बल्कि परिवार, समाज एवं राष्ट्र को भी कमज़ोर करता है। श्री सूरी ने बच्चों को आत्मसंयम, चरित्र निर्माण एवं वैदिक जीवन मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा दी।

श्री वी.के. चोपड़ा, निदेशक, ने कहा कि आज का युवा ही कल के भारत की दिशा और दशा तय करेगा। एक नुक्कड़ नाटक द्वारा नशे के दुष्परिणामों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

समस्त उपस्थिति ने नशामुक्त समाज निर्माण में सक्रिय योगदान देने का संकल्प लिया। प्राचार्या द्वारा धन्यवाद ज्ञापन एवं शांति पाठ के साथ समापन हुआ।

डी.ए.वी. ए.सी.सी. बरमाणा में प्राचार्य के स्वागत में यज्ञ

डी.ए.वी. ए.सी.सी. पब्लिक स्कूल बरमाणा में नये प्रधानाचार्य श्री विश्वास शर्मा जी के स्वागत में यज्ञ का आयोजन किया गया। वैदिक मंत्रोच्चारण एवं यज्ञ की दिव्यता के मध्य नये प्राचार्य की उपस्थित में कार्यक्रम को प्रेरणादायक बना दिया।

वैदिक समिति के सदस्यों, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने मिलकर पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति भाव से हवन में भाग लिया।

प्राचार्य विश्वास ने अपने संबोधन में कहा कि वे विद्यालय की वैदिक परम्पराओं को आगे बढ़ाते हुए शिक्षा के साथ–साथ संस्कारों एवं नैतिक मूल्यों के विकास के प्रति प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति से जुड़े रहने तथा यज्ञ के वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक महत्व को समझने के लिए प्रेरित किया और कहा कि वैदिक मंत्रों का उच्चारण मन एवं मस्तिक को सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है।

विद्यालय परिवार द्वारा विश्व शान्ति, विद्यालय की उन्नति एवं विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए यज्ञ में आहुतियाँ अर्पित की गईं। सम्पूर्ण वातावरण वैदिक मंत्रों एवं आध्यात्मिक ऊर्जा से ओत–प्रोत हो गया।

डी.ए.वी. न्यू पनवेल में आशीर्वाद यज्ञ का आयोजन

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, न्यू पनवेल में विद्यार्थियों को आशीर्वाद प्रदान करने हेतु यज्ञ का आयोजन किया गया।

प्राचार्य श्री सुमन्त घोष ने बताया कि अभिभावकों के अनुरोध पर, विद्यार्थियों को NEET और JEE जैसे प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए मार्गदर्शन प्रदान करने तथा उनकी व्यक्तिगत शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु विद्यालय समय के नियमित समय में कोचिंग कक्षाएं प्रारंभ की गई हैं।

इस कोचिंग के दौरान, NEET और JEE पाठ्यक्रम पढ़ाने में अनुभवी विशेष विशेषज्ञय विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करेंगे तथा उन्हें आत्मविश्वास के साथ इन प्रतियोगी परीक्षाओं का सामना करने हेतु तैयार करेंगे।

विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य, उत्तम स्वास्थ्य एवं परीक्षा में सफलता की कामना के लिए आर्यसमाज की परंपरानुसार प्रधानाचार्य, पर्यवेक्षी प्रमुखों एवं विद्यार्थियों द्वारा हवन संपन्न किया गया।

यह समारोह आध्यात्मिक एवं श्रद्धामय वातावरण में आयोजित किया गया, जिसमें विद्यार्थियों की समृद्धि एवं शैक्षणिक उत्कृष्टता के लिए प्रार्थनाएं की गईं। कार्यक्रम का समापन शांतिपाठ एवं प्रसाद वितरण के साथ हुआ।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 31 मई 2026 से 06 जून 2026

वाणी के सलिल में स्नान

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैः, भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मौत मृत्युः, अन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः।।
अथर्व 17.1.28

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **आदित्यः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**अहं**) मैं (**ऋतेन**) सत्य से (**च**) और (**सर्वैः**) सब (**ऋतुभिः**) ऋतुओं से (**गुप्तः**) रक्षितज [**होऊँ**], (**भूतेन**) अतीत से (**भव्येन च**) और भविष्यत् से (**गुप्तः**) रक्षित [**होऊँ**]। (**पाम्पा**) पाप (**मा**) मुझे (**मा**) मत (**प्रापत्**) प्राप्त हो, (**मा उत**) **न ही** (**मृत्युः**) मृत्यु [**प्राप्त हो**]। (**अहं**) मैं (**वाचः**) वेदवाणी के (**सलिलेन**) सलिल से, ज्ञानामृत से (**अन्तः दधे**) [स्वंय को] आच्छादित कर देता हूँ।

● मैं अ–सुरक्षा के सन्त्रास से व्याप्त इस जगत् में सर्वात्मना रक्षित रहना चाहता हूँ। पर रक्षा का उपाय क्या है? सहस्त्रों सैनिकों को अपने चारों ओर सन्नद्व करके भी मैं वैसी रक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, जैसी स्वयं नैतिक नियमों में बंधकर तथा आत्म–बल को जगाकर पा सकता हूँ। सर्वप्रथम मैं 'सत्य' से रक्षित होऊँ। मनुष्य बहुधा अपनी रक्षा के लिए 'असत्य' का अवलम्बन करता है। वह सोचता है कि असत्य कहकर मैं अपराध के दण्ड से बच जाऊँगा। पर असत्य छिपता नहीं। अपराधी को अपराध का दण्ड तो मिलता ही है, असत्य–भाषण का अतिरिक्त दण्ड भोगना पड़ता है। इसके विपरीत सत्य बोलकर अपना अपराध स्वीकार कर लेने पर वह क्षमा का पात्र हो जाता है। मैं ऋतुओं से भी रक्षित होऊँ। ग्रीष्म, बर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, छहों ऋतुएँ व्यवस्थित रूप से आकर प्रकृति के कार्य–कलाप का चारुता के साथ निर्वाह करती हैं। इन ऋतुओं से शिक्षा लेकर मैं भी अपने कार्य को यथासमय करने की आदत डालूँ, तो मैं भी रक्षित रह सकता हूँ। यदि मैं अपने राष्ट्र के उज्ज्वल अतीत से शिक्षा लेकर वर्तमान को उज्ज्वल करने का व्रत लूँ, तो अतीत भी मेरा रक्षक बन सकता है। उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करके उसे मूर्तरूप देने के प्रयास द्वारा 'भव्य' को भी मैं अपना रक्षक बना सकता हूँ।

पाप मुझे न प्राप्त हों। यदि मैं दृढ़ता धारण लूँ कि किसी भी अवस्था में पाप के वशीभूत नहीं होऊँगा, तो पाप सदा मुझसे दूर रहेगा। परिणामतः नैतिक दृष्टि से मैं सुरक्षित रहूँगा। मृत्यु भी मुझे न प्राप्त हो। यों तो जिसने जन्म लिया है वह मृत्यु से ग्रस्त होता ही है, किन्तु जब भी चाहे अकाल मृत्यु आकर हमें ग्रस ले तो हम सर्वथा असुरक्षित रहते हैं। अतः सुरक्षा के लिए अकाल मृत्यु से बचना आवश्यक है। अन्त में आत्मरक्षार्थ मैं वाणी के सलिल से, वेदवाणी के ज्ञानामृत से, स्वयं को अच्छादित करता हूँ। जैसे शीतल–पवित्र जल का पान और उसमें स्नान श्रम और सन्ताप को मिटाकर हमारी रक्षा करता है, वैसे ही वेदवाणी के पवित्र ज्ञान–सलिल में स्नान भी हमारे अज्ञान–मूलक दुःख–द्वन्द को हरकर हमारा रक्षक बनता है। अतः मैं वेदवाणी के निर्मल ज्ञान–सरोवर में डूबकी लगाता हूँ और सब भीतियों से रहित, सब अविद्याओं से मुक्त तथा सब कर्त्तव्य–बोधों से स्फूर्ति पाकर पूर्ण सुरक्षित हो जाता हूँ। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपतिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी द्वारा रचित 'प्रभु–भक्ति' पुस्तक में मोक्ष प्राप्ति के बहुत ही सरल व अमोघ साधन बताए हैं। इस मार्ग के लिए स्वामी जी लिंग, जाति, वर्ण आदि के भेदभाव को वेदों के अनुकूल नकारते हैं।
स्वामी जी ने स्त्री जाति और भक्ति शीर्षक में महिलाओं को भक्ति मार्ग में विशेष स्थान दिया है। महिलाएँ हृदय प्रधान होती हैं। वे शीघ्र ही भावुक हो जाती हैं। महाराज मनु के शब्दों में स्त्री पति सेवा से ही परम पद को प्राप्त कर देवताओं द्वारा पूजित होती हैं। पुरुषों को योग द्वारा शक्ति प्राप्त होती है तो कुलांगनाओं को अपने पातिव्रत से।

पति सेवा और दूसरे गृह कार्यों के साथ भगवान का स्मरण भी जारी रखना चाहिए। गोभिलीय गृह्य सूत्र के एक मन्त्र में विवाह संस्कार में कन्या कहती है कि मैं आज से पति के मार्ग पर जा रही हूँ ताकि मेरा जीवन सुखी व कल्याणकारी हो। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का वास्तविक उद्देश्य आत्मदर्शन है, इसे सदा अपने समक्ष रखो।...

.... अब आगे

भक्त की बात भगवान् से

आज तुझे अपना प्रार्त्तनाद सुनाता हूँ, इसे सुन मेरे भगवन् ! यह तेरे भक्त के अन्तरात्मा की ध्वनि है–

तेरा सुखदायक हाथ !

क्वस्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो
यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्त्ता रपसो दैव्यस्याभी
नु मा वृषभ चक्षमीथाः।।
(ऋ. 2–33–7)

"हे दुःखनाशक! वह तेरा सुखदायक हाथ कहाँ है जो दुःख–रोग हरने और आनन्द देनेवाला है, जो देव–सम्बन्धी पाप को दूर करने वाला है ? हे सुख की वर्षा करनेवाले ! तू अब तो मुझे (अभिचक्ष–मीथाः) क्षमा कर।"

चूहे काट रहे हैं !

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति
माध्य स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र
मृळयाधा पितेव न भव।।
(ऋ. 10–33–3)

"हे बहुत कर्मवाले! तेरे स्तोता होते हुए भी, मुझको मानसिक पीड़ाएँ विविध प्रकार से खा रही हैं, जैसे चूहे पान लगे सूत को खाते हैं। हे ऐश्वर्यवाले! हे इन्द्र! तू हमें एक बार अच्छी तरह सुखी कर दे और पिता की तरह हमारी रक्षा कर।"

हिमाद्रि पर्वत और सागर!

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य
समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै
देवाय हविषा विधेम।।
(ऋ. 10–121–4)

"जिसकी महिमा को ये हिमाच्छादित पर्वत कह रहे हैं, और जिसकी महिमा को नदियों सहित यह समुद्र गा रहा है, ये सारी दिशाएँ जिसकी हैं और जो इसके बाहुओं के समान हैं, उस सुखस्वरूप परमात्मा का मैं हवि द्वारा पूजन करुँ।"

कब वह दिन आयेगा?

उत स्वयातन्वा सं वदे तत्
कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत
कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम्।।
(ऋ. 7–86–2)

"कब वह समय आएगा जब मैं अपने आत्मा से परमात्मा के साथ संवाद करुँगा ? कब मैं प्रभु का अन्तरंग बनूँगा? कब वह प्रसन्न होकर मेरी भेंट स्वीकार करेगा? कब मैं प्रसन्न हुए मन के साथ उस सुख–दाता के दर्शन करुँगा?"

वह पाप तो बता दे!

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षपो
एमि चिकितुषो विपृच्छम्।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं
ह तुभ्यं वरुणो हृणीते।।
(ऋ. 7–86–3)

"हे वरुण सर्वश्रेष्ठ प्रभो! मैं दर्शन करने का अभिलाषी होकर तुझसे वह पाप पूछता हूँ जिसके कारण मैं बँधा हूँ। मैं जिज्ञासु, दर्शनाभिलाषी होकर तेरे समीप आया हूँ। ज्ञानी पुरुषों से भी विविध प्रकार से पूछता रहा हूँ।

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

परमात्मा का अंश आत्मा

● 'गंगा प्रसाद उपाध्याय'

'मैं परमेश्वर का एक अंश हूँ—महान् का एक खण्ड हूँ।' ऐसा कहना कितना गौरवमय है। 'मैं ईश्वर हूँ' या मुझ में कोई ईश्वरीय अंश है' ऐसी कल्पना मनुष्य को फुला देती है। यह प्रलोभन इतना प्रबल है कि **सभी कालों और सभी देशों के सन्तों ने इस स्वर में गाने में समाधि का सा आनन्द अनुभव किया है।** सांसारिक व्यवहार में भी बड़ों के साथ सम्बन्ध में एक विशेष आकर्षण होता है। फटे—पुराने चीथड़े पहना हुआ एक भिखारी भी यह सुन कर प्रसन्न होता है कि उसका किसी महान् पुरुष से सम्बन्ध है। संसार में अपना स्थान उन्नत करने के लिए बहुत बार काल्पनिक वंशावलियों या काल्पनिक सम्बन्धों के स्थापित करने की वासना कई लोगों में होती ही है। महापुरुषों की किसी देव या देवी से उत्पत्ति बताना ग्रीक देवमाला तथा हिन्दू पुराणों में समान हैं। राम सूर्यवंशी हैं, अर्थात् 'सूर्य' देवता उनके मूल पुरुष हैं। कृष्ण चन्द्रवंशी हैं अर्थात् उनका सम्बन्ध 'चन्द्र' देवता से है। ये सूर्य या चन्द्र, जिन्होंने राम या कृष्ण के पूर्वजों को उत्पन्न किया, कौन थे, इस बात के खोजने की न किसी को रुचि, और न अवकाश ही है। कई बार तो हम इस प्रकार की खोज के विचार से ही काँप उठते हैं कदाचित् यह काल्पनिक सिद्ध हो जाए और हम गौरव से वंचित हो जायें।

सम्बन्ध और भी अधिक मोहक हो जाता है, जब यह अंश और अंशी का रूप धारण करता है। जो सम्बन्ध हमें अभिन्नता का अधिकार प्रदान करता है, चाहे वह अभिन्नता आंशिक ही क्यों न हो, उस सम्बन्ध के सामने अन्य सम्बन्ध फीके पड़ जाते हैं।

अखण्ड का अंश कैसे—

किन्तु इस साधारण प्रतीत होने वाले वाद में समस्याएँ हैं। ज्यों ही हम यह विचारते हैं कि परमात्मा अखण्ड है और उसे अखण्ड ही होना चाहिए, त्यों ही यह विचार कि परमात्मा के अंश हैं या कोई व्यक्ति उसका अंश है व्यर्थ और अग्राह्य हो जाता है। इस समस्या का श्री व्यासदेव जी को भान हुआ। उन्होंने अपने वेदान्तदर्शन के दूसरे अध्याय के तीसरे पाद में इस का कुछ विवेचन भी किया है {**अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके।**} और वेदान्तदर्शन के विभिन्न भाष्यकारों ने अपने—अपने अभीष्ट मन्तव्यों के अनुसार इस सूत्र का भाष्य करने का यत्न किया है। श्रीशंकराचार्य जी लिखते हैं कि 'आत्मा परमात्मा का अंश हो सकते हैं, जैसे चिनगारियाँ आग का अंश हैं। किन्तु यहाँ 'अंश' का अर्थ 'अंश—समान' है क्योंकि मुख्य अर्थ में तो निरवयव पदार्थ के 'अंश' हो ही नहीं सकते। {**जीव ईश्वरस्यांशो भवितुमर्हति यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गः अंश इव अंशो, नहि निरवयवस्य मुख्योंऽशः सम्भवति। (वेदान्तदर्शन 2.3.43 पर शांकर भाष्य)**}

शांकर भाष्य की भामती टीका में श्रीवाचस्पति मिश्र ने इस वाद पर बहुत से पक्ष उठाए हैं। उसने वैदिक साहित्य से अनेक उदाहरण देकर आपाततः विरोधी प्रतीत होने वाले संदर्भों का समन्वय करने का (विरोध परिहार करके एकता

किन्तु इस साधारण प्रतीत होने वाले वाद में समस्याएँ हैं। ज्यों ही हम यह विचारते हैं कि परमात्मा अखण्ड है और उसे अखण्ड ही होना चाहिए, त्यों ही यह विचार कि परमात्मा के अंश हैं या कोई व्यक्ति उसका अंश है व्यर्थ और अग्राह्य हो जाता है। इस समस्या का श्री व्यासदेव जी को भान हुआ। उन्होंने अपने वेदान्तदर्शन के दूसरे अध्याय के तीसरे पाद में इस का कुछ विवेचन भी किया है {अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके।} और वेदान्तदर्शन के विभिन्न भाष्यकारों ने अपने-अपने अभीष्ट मन्तव्यों के अनुसार इस सूत्र का भाष्य करने का यत्न किया है।

स्थापित करने का) यत्न किया है। "जीवों और परमात्मा को अभेद मानने पर ईशितव्य और ईश का भेदभाव, जिज्ञासु और जिज्ञास्य का भेदभाव, ज्ञाता और ज्ञेय का भेदभाव, नियम्य और नियन्ता का भेदभाव, एवम् आधेय और आधार का भेदभाव नहीं बन सकता।" {**ईशितव्येशितृभावश्चान्वेष्टभावश्च ज्ञेयज्ञातृभावश्च नियम्यनियन्तृभावश्चा—धाराधेयभावश्च न जीवपरमात्मनोरभेदेऽवकल्प्यते (भामती)**} और न ही 'ब्रह्मदाशा ब्रह्मकितवाः' इत्यादि दाश कितवों तक को ब्रह्म बताने वाली श्रुतियाँ जीवों और ब्रह्म का भेद मानने पर संगत हो सकती हैं। {**न च 'ब्रह्मदाशा ब्रह्मकितवाः' इत्याद्याश्च श्रुतयो 'दाशा ब्रह्म' कितवो ब्रह्म इत्यादि प्रतिपादनपरा जीवानां ब्राह्मणो भेदेऽवकल्पन्ते। (भामती)।**} "जीव निरवयव ब्रह्म के अंश नहीं हो सकते।" {**नहि तावदनवयवस्येश्वरस्य जीवा भवितुमर्हन्त्यशाः।**} "और भी, यदि जीव परमात्मा के अंश हैं तो जीवों के दुःख परमात्मा के होंगे, जैसे देवदत्त के पाँव आदि की पीड़ा देवदत्त को होती है और इसी तरह ब्रह्मीभूत (मुक्त) जीव को समस्त जीवों के दुःख प्राप्त होंगे। इस मुक्ति से तो संसार ही भला है।" {**अपि च जीवानां ब्रह्मांशत्वे तद्गतवेदना ब्रह्मणि भवेत्। पादादिगता इव वेदना देवदत्तस्य। ततश्च ब्रह्मभूयं गतस्य समस्तजीवगतवेदनानुभवप्रसङ्ग इति वरं संसार एव मुक्तेः। (भामती)**}

जीव के दोष परमात्मा के दोष—

इसी तरह श्रीरामानुजाचार्य अपने श्रीभाष्य में लिखते हैं—"जीव ब्रह्म का अंश है, यह भी ठीक नहीं। अंश शब्द का अर्थ है किसी वस्तु का एक देश टुकड़ा। यदि जीव ब्रह्म का अंश एकदेश—टुकड़ा है तो जीव के दोष परमात्मा के दोष हुए। ब्रह्म के विभाग नहीं हो सकते अतः जीव ब्रह्म का खण्ड है, ऐसा अंशांशिभाव नहीं बन सकता। {**ब्रह्मांशो जीव इत्यादि न साधीयः। एकवस्त्वेकदेशवाची ह्यंशशब्दः। जीवस्य ब्रह्मैकदेशत्वे तद्गता दोषा ब्रह्मणि भवेयुः। न च ब्रह्मखण्डो जीव इत्यंशत्वोपपत्तिः। खण्डनानर्हत्वाद् ब्रह्मणः (श्रीभाष्यम् 2.3.42)**}

अंश, खण्ड, विभाग और विविध भाषाओं में इन शब्दों के पर्याय शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। एक भौतिक विभाग होता है, एक बौद्धिक =तार्किक विभाग होता है और एक आध्यात्मिक विभाग होता है। परमात्मा का भौतिक विभाग या अंश असम्भव और बुद्धि में न आ सकने वाला है अतः भौतिक अर्थों में जीव ब्रह्म का अंश नहीं हो सकता। एक सामान्य बुद्धि का मनुष्य भी परमात्मा में भौतिक विभाग की कल्पना की असारता को अनुभव करता है, किन्तु यह अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय है कि हम में अत्यन्त पारङ्गत विद्वान् भी यह विश्वास करते प्रतीत होते हैं कि आत्मा या जीव परमात्मा के भौतिक अर्थों में अंश या खण्ड है और अग्नि—चिन्गारी के दृष्टान्त से बहुत भ्रम पैदा होता है। वे कहते हैं कि महान् अग्नि—ब्रह्म से आत्माएँ चिन्गारियों की भाँति चटखा करती हैं। आग तो अन्ततः भौतिक पदार्थ है और भौतिक जगत् से ली गई उपमा, थोड़ी सी असावधानता से आध्यात्मिक जगत् में प्रयुक्त करने पर असीम हानि कर सकती है। जब हम यह कहते हैं कि हम जीव परमात्मा के अंश हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि हम स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त करने से पूर्व परमात्मा से अभिन्न थे, अर्थात् दूसरे शब्दों में अकेला परमात्मा ही था, हम न थे, इसका अर्थ अपनी अनादिता या अपनी मुख्य सत्ता का अपलाप करना इन्कार करना है। गीता में श्री कृष्ण जी का यह वचन बताया जाता है—

संसार में सनातन जीव मेरा ही अंश है।

{**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता 12.7)**}

इस वचन में आत्मा की अनादिता का निषेध नहीं किया गया है। यदि आत्मा अनादि है तो भौतिक अर्थ में किसी दूसरे पदार्थ का अंश नहीं हो सकता। तब क्या इसका यह भाव नहीं कि अंश का अर्थ कोई ऐसा भाव जिस में समानता या सादृश्य हो ? शंकराचार्य जी का अंश इव 'अंशः' कहना अधिक संगत है।

जीव की स्वतन्त्र सत्ता का निषेध किए बिना क्या जीव को परमात्मा का अंश इस अर्थ में कहा जा सकता है कि जीव की परमात्मा के साथ किसी अंश में समानता है, किन्तु हमें सावधान रहना चाहिए कि कहीं हम इस उपमा से धोखे में न पड़ जाएँ। समता विषमता की भी सूचक होती है। जब हम कहते हैं कि देवदत्त यज्ञदत्त के समान है तो इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि कई ऐसे विषय हैं, जिनमें वे दोनों समान नहीं हैं, अन्यथा 'देवदत्त यज्ञदत्त है', ऐसा कहते। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि 'जीवात्मा परमात्मा के समान है तो हमारा तात्पर्य असमानता भी जतलाना होता है, अर्थात् अज्ञता, असमर्थता एवं दुःख की दृष्टि से दोनों असमान हैं। आग की हर एक चिन्गारी में आग की चमक होती है, उसमें अन्धकार नहीं होता। सुवर्ण के प्रत्येक कण में सुवर्ण है, इसमें चाँदी या लोहा का अंश नहीं होता है किन्तु जो पदार्थ कुछ विषयों में अग्नि के समान है, उसमें ऐसे गुण भी हो सकते हैं, जो आग में न हों। सुवर्ण के समान वस्तु में सुवर्ण से भिन्न गुण भी हो सकते हैं। इस प्रकार यदि जीव कई अंशों में परमात्मा के समान है इसमें दुःखादि हो सकते हैं जो परमात्मा के गुण धर्म नहीं हैं।

बहुधा परमात्मा की महान् समुद्र से उपमा दी जाती है, जीव जिसकी तुच्छ बूँदें हैं। यह कहा जाता है कि जैसे जल की छोटी—छोटी बूँदें समुद्र से

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

गतांक से आगे...

गीता और महर्षि दयानन्द

● अमर स्वामी

एक और अनोखी और अनूठी कल्पना— 'ऋषि दयानन्द और गीता' नामक पुस्तक के पृष्ठ 15 पर लिखा है कि—

'मनु के दोनों श्लोकों में वेद पठन—पाठन, यज्ञ—याग और दान तीनों का ब्राह्मण और क्षत्रियों के कर्मों में विशेष स्थान है किन्तु गीता में इनका उल्लेख तक नहीं। क्षत्रिय के दान देने का तो वर्णन है किन्तु वेदाध्ययन और यज्ञ से वंचित कर दिया है। इससे गीता की इन तीनों कर्मों के प्रति उपेक्षा स्पष्ट है जिसकी पूर्ति के लिये ऋषि ने उपर्युक्त श्लोक का देना आवश्यक समझा।

इस सन्दर्भ से प्रकट होता है कि इसको लिखते समय सत्यार्थ प्रकाश का लेख सर्वथा उनके ध्यान में नहीं था या फिर जान बूझकर अपने मिथ्या पक्ष को लोगों के सम्मुख प्रबल बनाने के लिये सर्वथा उलटी बात लिख दी है।

कोई पूछे कि गीता के श्लोक जो वर्ण धर्म की अधूरी व्याख्या करते हैं उनको ऋषि लिख ही क्यों रहे थे ? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या गीता के श्लोक पहले दिये हैं और उनकी पूर्ति के लिये मनुस्मृति के श्लोक दिये हैं? यहाँ तो इसके विपरीत अर्थात् पहले मनुस्मृति के श्लोक दिये हैं पीछे गीता के।

'ऋषि दयानन्द और गीता' नामक पुस्तक का यह सारा सन्दर्भ ऋषि दयानन्द जी के अर्थों के भी विरुद्ध है और श्लोकों के शब्दों के भी विपरीत है।

शमो दमस्तपः, आदि श्लोक के अर्थ में ऋषि ने लिखा है कि (ज्ञान) सब वेदादि शास्त्रों को सांगोपांग पढ़कर पढ़ाने का सामर्थ्य विवेक—सत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसी हो अर्थात् जड़ को जड़—चेतन को चेतन, मानना और जानना।

(विज्ञान) पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग लेना (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व जन्म, पर—जन्म, धर्म, विद्या, माता—पिता—आचार्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना आदि।

ऋषि ने इस श्लोक में वेदाध्ययन का विधान माना है पर श्रीमान् जी को इसमें उसका उल्लेख तक दिखाई नहीं देता है। इसको दृष्टि दोष कहा जाए या कुछ और?

क्षत्रिय का लक्षण बताते हुए—शौर्य तेजो घृति—दक्ष आदि गीता के श्लोक में से 'दाक्ष्य' शब्द का अर्थ— (राजा और प्रजा सम्बन्धी **व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना।**

क्षत्रिय को वेदाध्ययन से वंचित कैसे कर दिया? वेद तो सनातन शास्त्र हैं वेद को बिना पढ़े सब शास्त्रों में अति चतुर होना कैसा?

यह तो गीता के श्लोकों का वह अर्थ हुआ जो ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा। अब श्लोकों के शब्दों पर विचार तो मनुस्मृति के श्लोक में ब्राह्मण के लिये 'अध्यापनमध्ययनम्' शब्दों का पाठ है। इसमें वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना कौन से अर्थ हैं? इसका सीधा अर्थ तो केवल पढ़ना—पढ़ाना है।

यदि कहा जाए कि—मनुस्मृति के अन्य वचनों के आधार पर हम 'अध्ययन' का अर्थ वेद पढ़ना और 'अध्यापन' का अर्थ वेद पढ़ाना लगाते हैं तो ठीक है इसी प्रकार गीता के अन्य वचनों के आधार पर यहाँ अर्थ लगाने चाहियें।

गीता में कहा है—**यदक्षरं वेदविदो वदन्ति** गीता 8.11 जिस अक्षर को वेद के जानने वाले बोलते हैं, आदि। यहाँ वेद को मानने का संकेत है और—

यावानर्थ उदपाने
सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु
ब्राह्मणस्य विजानतः।।

गीता (2.46)

में कहा है कि जितना प्रयोजन जलार्थी का सब ओर किनारों तक जल से छलकते भरे हुए जलाशय में है उतना सारे वेदों में ज्ञानी ब्राह्मण का है अर्थात् जलार्थी की सब आवश्यकताओं की पूर्ति जिस प्रकार पूरे भरे हुए जल के सरोवर से होती है इसी प्रकार सारे वेदों से ब्राह्मण की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति वेद से हो जाती है। इस प्रकार वेद का पढ़ना और पढ़ाना गीता के अनुसार आवश्यक सिद्ध हुआ, पर जिसकी आँखें पक्षपात ने अन्धी कर रक्खी हों उसको गीता में वेद पढ़ने का उल्लेख कभी दिखाई नहीं देगा। इस विषय में मेरी बनाई पुस्तक—'गीता और वेद' अवश्य पढ़नी चाहिये।

जो आपत्ति गीता के श्लोकों पर 'ऋषि दयानन्द और गीता' के लेखक ने उठाई थी उसका निराकरण तो ऋषि द्वारा किये अर्थ से हो गया। मेरा अभिप्राय तो केवल यहाँ यह दिखाने से था कि ऋषि ने गीता को यहाँ हेय नहीं किन्तु परम उपादेय माना है और ऋषि को उसमें वर्णधर्म की त्रुटिपूर्ण व्याख्या नहीं दिखाई दी किन्तु वर्णधर्म का पूरक व्याख्यान दिखाई दिया, इसीलिये ऋषि ने मनुस्मृति के श्लोकों के साथ गीता के श्लोकों को जोड़ना अत्यावश्यक समझा और संस्कार विधि तथा सत्यार्थ प्रकाश दोनों अनुपम ग्रन्थों में दोनों के श्लोकों को जोड़कर ही अर्थ किया। तभी तो ब्राह्मण के गुण कर्म 6 नहीं 15 गिनाये और क्षत्रिय के गुण कर्म 5 नहीं 11 गिने। यह संख्या गीता के श्लोकों को जोड़ने से ही पूरी होती है। आश्चर्य और दुःख की बात है कि इन्होंने महर्षि दयानन्द जी के लेख की उपेक्षा करके ऋषि को गीता का घोर विरोधी प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

(25) सत्यार्थ प्रकाश में गीता के दो श्लोक प्रश्न कर्त्ताओं की ओर से देकर ऋषि ने उनका समाधान किया है यथा—

प्रश्न—

यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानि र्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

गीता 4.8

श्री कृष्णजी कहते हैं कि जब—जब धर्म का लोप होता है, तब—तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

उत्तर— यह बात वेद विरूद्ध होने से प्रमाण नहीं— और ऐसा हो सकता है कि श्री कृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि युग—युग में जन्म लेकर श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करुँ तो कुछ दोष नहीं क्योंकि **'परोपकाराय सतां विभूतयः।'** परोपकार के लिये सत् पुरुषों का तन—मन—धन होता हैं। तथापि इससे श्री कृष्ण जी ईश्वर नहीं हो सकते। (सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम समुल्लास)। ऋषि की बुद्धि गहराई तक पहुँचती हैं इसलिए ऋषि के इस लेख में दो बातें स्पष्ट निकलती हैं। एक यह कि यदि तुम श्री कृष्ण को ईश्वर मानकर इस वचन को ईश्वर का वचन मानते हो तो यह बात वेद विरुद्ध है क्योंकि वेद में ईश्वर को निराकार और अजन्मा बताया है। दूसरी यह है कि यदि इस श्लोक को श्री कृष्ण (मनुष्य) का वचन माना जाए तो कुछ दोष नहीं क्योंकि वह जीव थे और जीव तो जन्म लेते ही हैं। भोगी जन प्रकृति के वश में होकर और योगी जन प्रकृति को वश में करके जन्म लेते हैं।

(26) दूसरा एक श्लोकार्ध **नवम समुल्लास** में इस प्रकार दिया गया है—

(प्रश्न) जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म—मरण रूप दुःख में कभी आते हैं या नहीं? क्योंकि—

न च पुनरावर्तते न च पुनरार्तत इति।।

उपनिषद् वचनम् (छा. प्र. 8 खं. 15)

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्।।

शारीरक सूत्र 4.4.33

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

भगवद्गीता 15.6

इत्यादि वचनों से विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्त होकर जीव पुनः संसार में कभी नहीं आता।

(उत्तर) यह बात ठीक नहीं, क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है। (इससे आगे मुक्ति से पुनरावृत्ति सिद्ध करने के लिये वेद के दो मन्त्र दिये हैं)।

यहाँ जो सम्मति ऋषि की छान्दोग्य उपनिषद् और वेदान्त दर्शन के विषय में होगी वही गीता के विषय में होगी, भिन्न नहीं, क्योंकि प्रश्न कर्त्ता की ओर से तीनों ग्रन्थों के प्रमाण एक ही विषय में एक ही प्रश्न में दिये गये हैं और तीनों के विषय में ऋषि का एक ही उत्तर है कि—"यह बात ठीक नहीं।" क्या ठीक नहीं? ये वचन ठीक नहीं या इनका अर्थ ठीक नहीं? यदि यह कहा जाए कि ये वचन ठीक नहीं तो इसके दो अर्थ होंगे—(1) यदि यह कहा जाए कि ये वचन उन—उन ग्रन्थों के नहीं हैं तो लगता है कि ऐसा कहना ऋषि को अभीष्ट नहीं है क्योंकि ये तीनों ग्रन्थ ऋषि ने पढ़े हैं और तीनों वचन भी ऋषि के देखे हुए हैं। (2) दूसरा भाव यह लिया जा सकता है कि ये वचन उन ग्रन्थों में हैं तो अवश्य, पर तीनों के तीनों प्रक्षिप्त हैं, ऐसा कहना भी ऋषि को अभीष्ट नहीं लगता क्योंकि ऋषि ने कहीं भी उपनिषदों और दर्शनों में प्रक्षेप नहीं बताया है, यह भी नहीं प्रतीत होता कि इन तीनों वचनों को ऋषि जी वेद विरुद्ध कहते हों, क्योंकि—इन ग्रन्थों को ऋषि ने वेदविरुद्ध कहीं नहीं बताया है। यदि गीता के वचन को वेद विरुद्ध बताया जाए तो ऊपर के दोनों भी वेद विरूद्ध ही हुये। ऋषि का निर्णय इन तीनों के लिये है—यह ठीक नहीं। यह निर्णय अकेले गीता के प्रमाण पर ही नहीं लग सकता है ऐसी स्थिति में स्पष्ट

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

मानव-निर्माण में वैदिक मूल्यों का समावेशः एक विवेचन

● **प्रो. धर्मेन्द्र कुमार**

आज भारतवर्ष की अधिकांश समस्याओं का एक मौलिक कारण राष्ट्रीय भावना का अभाव है। साम्प्रदायिक भावना, जातीय भेदभाव, जातीय संघर्ष, प्रान्तीय एवं क्षेत्रीय विद्वेष, भाषा सम्बन्धी विवाद–इन सभी के मूल में राष्ट्रीय एकता समन्वय एवं भावना का न होना है। समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक जातीय संघर्षों, असहिष्णुता, स्वार्थपरता एवं कर्त्तव्य की उपेक्षा– जैसी व्यापक कुरीतियों पर वैदिक भावनाओं के द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है।

शिक्षा मानव–जीवन में एक सतत प्रक्रिया है। जीवन भर मनुष्य कुछ न कुछ सीखता रहता है इसलिए वह जीवन भर विद्यार्थी रहता है, क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा पराकाष्ठा नहीं है, वह अगाध एवं विपुल है **"अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः"** कहा है। विद्यार्थियों को बाल्यकाल से ही उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता–पिता आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्त्तव्य है। इसलिए कहा गया है–**"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"** जब तीन उत्तम माता–पिता और आचार्य हो, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

ऋषियों ने कितनी अच्छी व्यवस्था बनाई थी जो सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र के लिए कल्याणकारिणी थी। बालक के जन्म लेते ही हम उसे संस्कारों के साँचे में ढालने का प्रयत्न करते थे। माता–पिता अपने पूर्ण कर्त्तव्य के साथ इनका पालन करें, ताकि प्रजा का अच्छा निर्माण हो सके। जब बालक पढ़ने के लिए जाए तो उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया जाना चाहिए। जब वह गुरुगृह से वापिस लौटकर विद्या समाप्त करके घर वापस लौट आता था, तब आचार्य उसे यही उपदेश करता था–**"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। यान्यनवद्यानि कर्माण तानि सेवितव्यानि नो इतराणि"** अर्थात् जो हमारे सुचरित है, उन्हीं के अनुसार आचरण करना, अन्यों का नहीं। जो हमारे द्वारा त्रुटियाँ या अज्ञानवश कोई निंदनीय कर्म हो जायें, तो उन्हें अपने जीवन में स्थान नहीं देना जो प्रशंसनीय कार्य हैं, उत्तम गुण कार्य स्वभाव हैं, उन्हें ही अपनाना, अन्यों को नहीं।

> **शिक्षा मानव-जीवन में एक सतत प्रक्रिया है। जीवन भर मनुष्य कुछ न कुछ सीखता रहता है इसलिए वह जीवन भर विद्यार्थी रहता है, क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा पराकाष्ठा नहीं है, वह अगाध एवं विपुल है "अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः" कहा है। विद्यार्थियों को बाल्यकाल से ही उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता-पिता आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्त्तव्य है। इसलिए कहा गया है-"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" जब तीन उत्तम माता-पिता और आचार्य हो, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।**

इस प्रकार से वैदिक वाङ्मय में अनेक ग्रन्थों में शिक्षा विषयक वैदिक मूल्यों का भिन्न–भिन्न प्रकारों से गहन विश्लेषण–अध्ययन किया गया है। जिन मूल्यों को आज भी हम शिक्षा–क्षेत्र में प्रासंगिक देखते हैं।

विद्यास्नातक बनकर शिष्य आचार्य कुल से जब स्वगृह वापस लौट आते थे, उस समय तीन समिधाओं से आहुतियाँ देते हुए ब्रह्मचारी कहा करते थे–**"यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभि ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे।"** ये वैदिक शिक्षा के सार्वभौम उद्देश्य थे। सबसे प्रथम श्रद्धा माता–पिता के प्रति, गुरुजनों के प्रति, ईश्वर के प्रति, अपने को अहंकार से बचाना, बुद्धि का विकास, बुरे–भले का ज्ञान, विचारशक्ति, हृष्ट–पुष्ट संतान उत्पन्न करना, धनोपार्जन की योग्यता प्राप्त करना, आयुष्मान् होना, शरीर की रक्षा करना, बलवान् होना और अमृत्व प्राप्त करना–ये शिक्षा के उद्देश्य थे। विद्या विवाद के लिए नहीं, ज्ञान के लिए, विज्ञान के विकास के लिए होनी चाहिए। धन विलास और व्यसन के लिए नहीं, दान के लिए होना चाहिए। शक्ति औरों को कष्ट देने के लिए नहीं, निर्बल की सहायता के लिए यह लक्ष्य होना चाहिए।

प्राचीन काल में भी समस्त ज्ञान–विज्ञान छात्रों को पढ़ाया जाता था, यह बात छान्दोग्य उपनिषद् के सनत् कुमार एवं नारद के जिज्ञासा–भाव से प्रकटित होती है। नारद मुनि आचार्य सनत् कुमार जी के पास पहुँचते हैं तथा उनसे ज्ञान–प्राप्ति की चर्चा करते हैं। आचार्य नारदमुनि जी से पूछते हैं कि तुमने अब तक किन–किन विषयों का अध्ययन किया है? तब नारदजी उत्तर में कहते हैं–

"ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम् चतुर्थमितिहास– पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यम् राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजन–विद्यामेतत् विद्यामेतत् भगवोऽध्येमि।"

नारदमुनि कहते हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद को पढ़ चुका हूँ। चौथे इतिहास–पुराण को, पित्र्यम्–गृहविज्ञान को निधिम्–अर्थशास्त्र को वाकोवाक्यम्–तर्कशास्त्र कानून विज्ञान को, एकायनम्–नीतिशास्त्र धर्मशास्त्र को, देवविद्याम्–निरुक्तशास्त्र को, ब्रह्मविद्या को, भूतविद्याम्– प्राणीशास्त्र को, क्षत्रविद्याम्–धनुर्वेद को, नक्षत्रविद्याम्, ज्योतिष शास्त्र को, सप र्देवजनविद्याम्–सर्पचिकित्सा–देवजन विद्या–ललित कला इत्यादि विद्याओं को हे भगवन्! मैं पढ़ चुका हूँ। यह सब कुछ पढ़कर मैं 'मन्त्रवित्' बन गया हूँ। आत्मवित् नहीं हुआ। हे भगवन्! मैंने सुना है तरति शोकम् आत्मवित् जो आत्मा जान जाता है, वह दुःख–सागर से तैर जाता है। हे भगवन्! मैं शोक–सागर में डूबा जा रहा हूँ। आज मुझे इससे पार उतारिये। यह सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा–"तूने अब तक जो सीखा है, वह नाममात्र है। यह तो सीढ़ी मात्र है। तू नाम की उपासना कर शब्दज्ञान को जरूर जान।" इस प्रकार नाम से आगे अन्य विस्तृत गहन विद्याओं का वर्णन आचार्य ने किया है। कहने का तात्पर्य सब कालों में, सब विद्याओं का ज्ञान–विज्ञान प्रचुर मात्रा में पढ़ाया व पढ़ा जाता था और यह परम्परा आगे भी इसी रूप में अक्षुण्ण बनी रहेगी।

तैत्तिरीय उपनिषद् का प्रारम्भ तो शिक्षाध्याय से ही हुआ है–**'शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्ण स्वरः। मात्रा बलम् साम संतानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।'** इन थोड़े से वाक्यों में ऋषियों ने कितनी ज्ञान–विज्ञान की बातें कह दी हैं। आज भी हम बच्चों को सर्वप्रथम यही शब्दज्ञान–वर्णज्ञान कराते हैं। कौन–सा वर्ण अक्षर कैसे बोला जाता है ? ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, इस प्रकार मात्राओं के भेदों को समझकर यथायोग्य उच्चारण करना चाहिए क्योंकि ह्रस्व उच्चारण करने में अर्थ का बहुत अन्तर हो जाता है। जैसे 'सिता' और 'सीता'। बल का अर्थ है– प्रयत्न। वर्णों के उच्चारण में, उनकी ध्वनि को व्यक्त करने में जो प्रयास करना पड़ता है, वही प्रयत्न कहलाता है। इसके बाद शब्द–ज्ञान में 'साम' अर्थात् समता से उच्चारण करना आना चाहिए। वर्ण, स्वर, मात्रा, बल और साम के ज्ञान के अनन्तर शब्दों का सन्तान प्रारम्भ हो जाता है। शब्दों से वाक्य और वाक्यों से ग्रन्थ बन जाते हैं। इस प्रकार वर्णों से प्रारम्भ करके वर्णों की सन्तान तक पहुँच जाने से ही सब शिक्षा समा जाती है।

प्रश्न होता है–विद्या का उद्गम स्थल, उत्पत्ति कहाँ से होती है ? इसके उत्तर में ऋषि कहते हैं–**"अथाधिविद्यम्। आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या सन्धिः। प्रवचनं सन्धानम्। आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या सन्धिः। प्रवचनं सन्धानम्। इत्यधिविद्यम्।"**

(तैत्तिरीयपनिषद् 1–3)

कितने सुन्दर एवं मार्मिक शब्दों में विद्या का विशद वर्णन हुआ है। वस्तुतः आचार्य ही विद्या का उद्गम स्थल होता है, उसी से विद्या निस्सृत होती है। विद्या का लक्ष्य भूत केन्द्र प्रधान होता है। अन्तेवासी इसलिए आचार्य पूर्व रूप है तो शिष्य अन्तेवासी उत्तर रूप है। इन दोनों का मेल **किं वा** जोड़ने वाली विद्या होती है, इसलिए ऋषि ने उसे सन्धि कहा है तथा इन दोनों से उत्पन्न ज्ञान विद्या की अभिव्यक्ति प्रवचन से होती है। अतः प्रवचन सन्धान है। विद्या के क्षेत्र में आचार्य, शिष्य, विद्या तथा प्रवचन मानो एक–एक वर्ण है। जैसे भिन्न–भिन्न

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

गतांक से आगे...

उत्पत्ति का विज्ञान क्या है?

● **श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'**

{श्री हरिश्चन्द्र वर्मा जी के अपनी अनन्त यात्रा पर चले जाने के बाद उनके सुपुत्र द्वारा वर्मा जी द्वारा लिखित लेखों की कुछ अप्रकाशित प्रतियाँ 'आर्यजगत्' को भेजी गई थी। समय–समय पर उस सामग्री को आर्यजगत् के पाठकों को परोसा जाता है। 'उत्पत्ति विज्ञान' पर वर्मा जी का लेख धारावाहिक रूप में प्रस्तुत है।–सम्पादक}

प्रश्न–हमसे कई लोगों ने पूछा कि, क्या वेद में कोई मंत्र है, जो यह सिद्ध कर सके कि–आदि सृष्टि एवं मनुष्योत्पित्ति काल कब हुई थी?

उत्तर–वैसे तो ब्रह्म यज्ञ के पहिले हिन्दुओं के दैनिक संकल्प में रोज पढ़ा जाता है। संकल्प का सारांश इस प्रकार है–"द्वितीय परार्द्धे, वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टविंशति कलौयुगे 5108 गताब्दे। अर्थात् यह वैवस्वत मनु का अट्ठाइसवाँ कलि है। जिसके 5108 वर्ष बीत चुके हैं। ब्रह्मा के एक दिन को कल्प अथवा सृष्टि समय कहते हैं। स्वयं वेद मे ही लिखा है–"किमता स्कम्भः प्रविवेश भूतं किमद् भविष्य दत्वा शयेश्य। एकं मदंगमकृणोत्सहस्रधा किमता स्कम्भ प्रविवेशतत्र।। अथर्व–10.7.9।। अर्थात् भूत भविष्यमय काल रूपी घर, एक सहस्र खम्भों पर खड़ा किया गया है। इन खम्भों के अलंकार से एक कल्प में होने वाली एक सहस्र चतुर्युगियों का वर्णन किया गया है। अथर्ववेद–8.2.21 में एक कल्प के वर्षों की संख्या इस प्रकार बतलाई गई है–'शतंते अयुतं हायनान्द्वे युगे यीणि चत्वारि कृण्मः 'अर्थात् सौ अयुत वर्षों के आगे दो, तीन और चार की संख्या लिखने से, कल्पकाल निकल आवेगा। अयुत दश हजार का होता है। इसलिये सौ अयुत दशलक्ष के हुए। दशलक्ष के सात शून्य लिखकर उनके पहिले दो, तीन, चार लिखने से 432,00,00,000 वर्ष होते हैं। यह संख्या एक हजार चतुर्युगियों की है। इसी को एक ब्राह्म दिन या कल्प की संख्या कहते है (और उतनी संख्या प्रलय की होती है)। यजुर्वेद –30.18 में चार युगों के नाम इस प्रकार हैं–'कृताया दिनवदर्शं भेतायै कल्पिनं द्वापरामाधि कल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम्। इसका अर्थ तैतिरीय–4.3.1 में इस प्रकार है–'कृ ताय सभाविनम् भेताया आदिनवदर्शं द्वापराय बहिस्सदं कलये सभास्थाणुं। 'यहाँ तक हमने कह दिखलाया कि चारो युगों और उनके दीर्घ समय का वर्णन, वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि प्राचीन आर्य ग्रन्थों में वर्णित हैं, और ईरान, स्कंडिनेविया और बेबिलोनियाँ आदि विदेशियों के यहाँ भी पाया जाता है। इसलिये यह लम्बी संख्या मन गढ़न्त नहीं है–पौराणिक नहीं है।

तात्पर्य यह कि–सृष्टि संवत् मनुष्य उत्पत्ति से नहीं, प्रत्युत सृष्टि उत्पत्ति के आरम्भ से मानना पड़ेगा। अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति स्वायंभुव मनु से, और मनुष्य उत्पत्ति वैवस्वत मनु से माननी पड़ेगी। वेद एवं मानव सृष्टि सम्वत–(2008 तक) एक अरब, पच्चानबे करोड़, अन्ठावनलाख, पच्चासी हजार एक सौ आठ वर्ष हो गये हैं। {**मनु–एक सृष्टिकाल में 15 संधियों सहित 14 मनु होते हैं, ऋग्वेद मंडल 100 सं. 114 मं. 8। संधि से रहित काल को मन्वन्तर, कहते हैं, हर मन्वन्तर का आरम्भ जल प्लव से पश्चात् होता है, यह जल प्लव एक मनु से दूसरे मनु को अलग करता है, अतः उसे मन्वन्तर कहते हैं, मनु और मन्वन्तर दोनों के नाम एक ही है जब तक स्वायम्भुव आदि छः मनु बीत गये, सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान है।**} (1,95,58,85,108) {**दूसरी गणना के अनुसार, सृष्टि संवत् 7 अप्रेल 2008 चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को 1,96,08,53, 109 एक अरब, छियानबे करोड़, आठ लाख, तिरपन हजार, एक सौ नववें वर्ष में प्रवेश कर गया है।**}

यद्यपि यह संख्या लोगो को अधिक प्रतीत होगी, क्योंकि आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य उत्पत्ति का समय 1 लाख से 60 लाख वर्ष तक ही माना है। परन्तु यह ढूँढ तलाश अभी पूर्ण नहीं हुआ है। इसमें अभी नये–नये अनुभव हो रहे हैं।'

स्व. पं. वीरसेन वेदश्रमी 'वेदविज्ञानाचार्य' अपनी 'वैदिक सम्पदा' में लिखे हैं कि–"सृष्टि विद्या का यदि वेदों से गंभीर अनुशीलन किया जावे तो गणित और विज्ञान का अनेक रूप में दर्शन होता है। वेद में आयु के एक प्रकरण में सृष्टि की आयु का उल्लेख आता है जिसमें युगों की आयु एवं पूर्ण सृष्टि की आयु का भी संख्याओं में दिग्दर्शन होता है (पुनश्च) मन्त्र निम्न प्रकार हैः–

'शतंतेऽयुतं नान द्वे युगे, त्रीणि चत्वारि कृण्मः। इन्द्रग्नी विश्वेदेवास्तेऽनुमन्यता महृणीयमानाः।। (अथर्व. 8.2.21) वेद में प्रयुक्त संख्याओं का अंकों में लिखे के क्रम से विपरीत से चलाना होगा। इस प्रकार चत्वारी (4) त्रीणि (3) द्वे (2) अयुतं (000) हजार, शतं (000) सैकड़ाते हायनान युगे कृण्मः = तेरे वर्ष युगों में विभाजित करता हूँ अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की सृष्टि की आयु युगों में विभक्त है। इससे सृष्टि की आयु की संख्या, 4,32,00,00,000 वेद से ज्ञात हुई। वेद ने इसको बड़ी सुन्दरता से युगों में विभक्त कर दिया है, यथा–कलयुग की आयु–432000 वर्ष। द्वापर का–864000 वर्ष। त्रेता का–12, 96000 वर्ष। सतयुग का–1728000 वर्ष यह हजार चतुर्युगियों की संख्या है जिसे एक ब्राह्म दिन, या कल्प कहते हैं।"

मनुष्य का गोत्र ऋषि सम्बन्धी है। जो कहते हैं, आर्यों की सभ्यता 45000 वर्ष पूर्व की नहीं है, उन्हें चाहिये कि वे पहिले अपने गोत्र=ऋषियों का इतिहास देखें क्योंकि गौतमबुद्ध ने भी अपने काल के ब्राह्मणों को स्वयं कहता है कि, ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि थे। बुद्ध काल में कोई ऋषि न था, अतः स्पष्ट है कि आज से लाखों वर्ष पूर्व जैसे मनु से सूर्य और चन्द्र वंश चला वैसे ही भिन्न–भिन्न ऋषियों के कुल से भिन्न–भिन्न गोत्र भी चले।

कहते हैं पहिले जिस ऋषि कुल में जो जन्म लेता था वह यदि, वेद–विद्यागुण कर्मों से ऋषि न होकर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों जैसा कर्म करता था, तो वह उसी वर्ण का हो जाता था (परन्तु उनका गोत्र वही रहता था) जो जिस ऋषि कुल में उत्पन्न होता था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आज भी वही परम्परा अविरत है।

वेद उतना ही प्राचीन है जितना की मानव की आदि सृष्टि–परन्तु आजकल विज्ञान का युग है। वह प्राचीन ऋषियों के तत्व–दर्शन को पूर्ण रूप से नहीं मानता अपितु उसका उपहास करता है। यही कारण है किसी–किसी ने सृष्टि की आयु लाखों तक ही बतलाई परन्तु कभी न कभी सच्चाई प्रकट होकर ही रहती है।

1 अगस्त 1997 ई. (म.प्र) के नर्मदा नदी तट के खोदाई में जो मानव हड्डियाँ मिली हैं अनुसंधान कर्त्ताओं का कहना है कि 5 लाख वर्ष से अधिक पुराने हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि मानव का इतिहास और कितना पुराना हो सकता है (दूरदर्शन समाचार 7 अगस्त 1997 ई.)

श्रीलंका में श्रीरामरावण का ऐतिहासिक चिह्नों से यह पता लग चुका है कि वेरामसेतु आदि लाखों वर्ष पुराने हैं।

अन्ततोगत्वा, अब वैज्ञानिक लोग उसी सत्य सिद्धान्त की ओर पहुँच रहे हैं, जिसके दर्शन कान्तदर्शी ऋषियों ने पहिले ही कर लिया था।

25 दिसम्बर 1955 का वाशिंगटन (अमेरिका) का समाचार उन्हीं दिनों, दिल्ली के अमेरीकी दूतावास द्वारा प्रकाशित होने वाले 'अमेरिकन–रिपोर्टर' पत्र में छपा था कि अमेरिका की बेदशालाओं के प्रमुख ज्योतिषियों ने हाल में घोषणा की है कि–पृथ्वी की आयु 5 अरब 40 लाख वर्ष निकलती है। परन्तु साथ ही उनका यह भी कहना है, कि इस गणना में बीस प्रतिशत की मूल हो सकता है। सही आयु निकालने में अभी कई वर्ष और लगेंगे।

वैज्ञानिकों को इस गणना में यदि 40 लाख की जगह 40 करोड़ प्रतिशत की मूल मान जावे, तो पाठक हैरान हुए बिना न रहेंगे, कि पृथ्वी की आयु शत–प्रतिशत ठीक से वह निकलती है, जिसे भारत के ऋषियों ने बतलाया था।

फिर चन्द्र धरातल की बैगनी रंग की मिट्टी से तो वैज्ञानिक लोग सृष्टि आयु से और भी प्रभावित हुए हैं। उनका कहना है कि चन्द्र की आयु अरबों वर्ष हो सकता है। अतः उनके शब्दों में ब्रह्माड की सृष्टि कैसे और कब हुई उसका सही पता अज्ञात है।

परन्तु अब चन्द्र चट्टानों के भग्नांशो से, वैज्ञानिकों को इसमें कोई संदेह नहीं रहा है कि पृथिवी की आयु वही हो सकती है। जो वैदिक ऋषियों ने कही है। परन्तु 'पृथ्वी के चारो तरफ समुद्र के खारे जल और हिमालय से प्रमाणित होता है कि यह उससे भी अधिक पुराना हो सकता है।

क्रमशः

मु. पो. मुरारई, जिला–वीरभूम (पश्चिम बंगाल)

गतांक से आगे...

पदवाक्य प्रमाणज्ञ श्री. पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री द्वारा लिखित यह लेख धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। योजनानुसार प्रकाशित हो जाने पर एक ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित किया जायेगा। – सम्पादक

संस्कृत विश्वविद्यालय में 'प्राचीन व्याकरण' को पाठ्यक्रम में स्थान दिलाना

गुरुजी का एक अति महत्त्वपूर्ण कार्य यह रहा कि काशी का क्वीन्स कॉलेज (संस्कृत महाविद्यालय) जब उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. सम्पूर्णानन्द के उद्योग से वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, तब प्रख्यात प्राच्यविद्याविशारद डॉ. मंगलदेव शास्त्री इसके प्रथम उपकुलपति पद पर प्रतिष्ठित हुए। पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी से मान्य डॉ. शास्त्री जी की अन्तरंगता थी। डॉ. शास्त्री बाल्यकाल में गुरुकुल सूर्यकुण्ड बदायूँ (स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा स्थापित) में पढ़े थे। अतः ऋषि दयानन्द के भक्त जिज्ञासु जी ने इस विश्वविद्यालय की मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाओं के लिए प्राचीन व्याकरण विषय स्वीकृत कराया। पाठ्यक्रम में अष्टाध्यायी, काशिका तथा महाभाष्य ग्रन्थ निर्धारित किए गए। सहायक ग्रन्थ के रूप में ऋषि दयानन्दकृत वेदांग प्रकाश के सन्धि, नामिक, आख्यातिक आदि ग्रन्थ भी लगाये गये। 'प्राचीन व्याकरण विभाग' भी अलग से विश्वविद्यालय में खोला गया, जिसके प्रथम आचार्य (प्रोफेसर) पद पर पं. श्री देवदत्त शर्मोपाध्याय प्रतिष्ठित हुए। पं. देवदत्त जी शर्मोपाध्याय गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के सुयोग्य स्नातक थे तथा उन्हें व्याकरण, दर्शन और आगम विषय में विशेष प्रवीणता प्राप्त थी। वेद विषय में 'वेदनिरुक्ताचार्य' की परीक्षा और उसका पाठ्यक्रम भी गुरुजी के अनन्य सहयोग से ही सम्भव हो सका।

साहित्य साधना

1. **यजुर्वेद भाष्य विवरण**–गुरुजी की रचनाओं में यह सर्वप्रमुख है। ऋषि दयानन्द रचित यजुर्वेद भाष्य के प्रथम 15 अध्यायों पर यह विवरण लिखा गया है। 20×30/8 आकार के कुल 1079 पृष्ठों का यह महत्काय ग्रन्थ है। ऋषि–भाष्य पर विस्तृत टिप्पणियों के अतिरिक्त भाष्य की पुष्टि में व्याकरण की विशद विवृति तथा स्वर प्रक्रिया भी दी गई है। दयानन्द–भाष्य पर पौराणिक पण्डितों द्वारा निर्दिष्ट अशुद्धियों तथा भाषागत अपप्रयोगों की साधुता यहाँ सिद्ध की गई है। ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य तथा उनकी वैदिक मान्यताओं पर जो भी आक्षेप ऋषि के समकालीन पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी से लेकर 1940 ई. तक पौराणिक, पाश्चात्त्य तथा आधुनिक विद्वान् लगाते रहे हैं, उन सबका शास्त्रीय समाधान (तर्क और प्रमाण से समन्वित उत्तर भी) इसमें द्रष्टव्य है। साथ ही इसमें वेद ज्ञान का स्वरूप, वेद की शाखाएँ, देवतावाद, छन्दोविचार, धातुओं का अनेकार्थत्व, यौगिकवाद तथा वेदार्थ की विविध प्रक्रिया आदि विविध विषय भी विवेचित हुए हैं। प्रथम 10 अध्याय तक इस ग्रन्थ का 1944 ई. में प्रथम संस्करण तथा 1959 ई. में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। अवशिष्ट 5 अध्यायों का विवरण 2008 विक्रम संवत् में प्रकाशित हुआ।

2. अष्टाध्यायी भाष्य–प्रथमावृत्ति

गुरुजी आजीवन ऋषि दयानन्द प्रदर्शित अष्टाध्यायी–क्रम से अर्थात् आर्ष पद्धति से संस्कृत व्याकरण के पठन–पाठन में व्यापृत रहे थे अतः उन्होंने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के प्रत्येक सूत्र की (1) पदच्छेद–विभक्ति (2) समास (3) अधिकार–अनुवृत्ति (4) अर्थ (5) उदाहरण (6) सिद्धि–के रूप में विस्तृत व्याख्या लिखने का उपक्रम किया। सहायक के रूप में रहीं उन्हीं की प्रिय अन्तेवासिनी डॉ० प्रज्ञा देवी व्याकरणाचार्या। यह महत् कार्य तीन भागों में पूर्ण हुआ। सौभाग्य से प्रथम भाग (1–3 अध्याय पृष्ठ–1021) का लोकार्पण गुरुजी के जीवनकाल में ही 15 दिसम्बर 1964 ई0 को सम्पन्न हुआ। द्वितीय भाग (चतुर्थ तथा पंचम अध्याय–पृष्ठ–595) का प्रकाशन उनके निधन के पश्चात् दिसम्बर 1965 ई. में हुआ। तृतीय भाग (6–8 अध्याय, पृष्ठ–784) को उसी शैली में गुरुजी की शिष्या डॉ. प्रज्ञा देवी व्याकरणाचार्या ने लिखकर पूरा किया, जिसका प्रकाशन जनवरी 1968 ई. में हुआ।

3. ऋषि दयानन्द रचित अष्टाध्यायी भाष्य का सम्पादन

स्वामी दयानन्द रचित अष्टाध्यायी भाष्य की हस्तलिखित प्रति परोपकारिणी सभा में विद्यमान है। यह भाष्य प्रथम अध्याय से लेकर सप्तम अध्याय के द्वितीय पाद के दो तिहाई सूत्र पर्यन्त है। **{ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास (पं. युधिष्ठिर मीमांसक) द्वितीय संस्करण – 2018 ई., पृष्ठ–166–170}** प्रारम्भ से लेकर चतुर्थ अध्याय पर्यन्त का भाष्य ऋषि दयानन्द कृत है, शेष भाग स्वामी जी के सहयोगी पण्डितो का प्रयत्न है 'प्रथम दो अध्यायों तक का सम्पादन प्रख्यात प्राच्यविद्याविद् डॉ. रघुवीर ने किया था, जिसका प्रकाशन परोपकारिणी सभा नें 1927 ई. में किया। तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय के सम्पादन का कार्य सम्पन्न करके पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने 1942 ई. में परोपकारिणी सभा को सौंप दिया था।' खेद है कि परोपकारिणी सभा चिरकाल तक इसे प्रकाशित न कर सकी और 1982 ई. में पं. युधिष्ठिर मीमांसक को सभा ने सूचित किया कि यह गुम हो गया है। **{वही, पृष्ठ–173}**

4. संस्कृत पठन–पाठन की अनुभूत सरलतम विधि

गुरुजी ने प्रौढ़ावस्था वाले सज्जनों के लिए आर्ष पद्धति अर्थात् अष्टाध्यायी क्रम से संस्कृत व्याकरण के पठन–पाठन का आन्दोलन कई दशकों तक चलाया था। देश के विभिन्न भागों में इसी क्रम से व्याकरण के अध्ययन–अध्यापन में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली थी। पठन–पाठन इस क्रम को सिलसिलेवार 44 (चौवालीस) पाठों में उन्होंने लेखबद्ध किया तथा अग्रिम साढ़े चार मास के पाठ का निर्देश भी। 6 मास में पूरी होने वाली यह सब सामग्री उपर्युक्त शीर्षक के रूप में पुस्तकाकार छापी गई। कहना नहीं होगा कि इस पुस्तक की सहायता से लाखों लोगों ने संस्कृत व्याकरण का यथोचित अंश अधिगत किया। गुरुजी के शिष्यों–पं. धर्मानन्द शास्त्री तथा आचार्य डॉ. धर्मवीर जी ने लगभग 50 वर्षों तक देश के अनेक नगरों में शिविर के रूप में "सरलतम विधि" का अध्यापन जारी रखा। इसका प्रथम संस्करण 1955 ई. में प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व 'वेदवाणी' के 1955 ई. के अंको में भी क्रमशः यह सब छपा था।

5. जिज्ञासु रचना मंजरी (प्रथम भाग)

पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी की जन्म शताब्दी (1992 ई.) वर्ष के समापन के अवसर पर गुरुजी की उपरि वर्णित पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाओं को संकलित कर दो भागों में छापा गया। दोनों भागों के सम्पादक थे–पं. युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग की पृष्ठ सं.–465, आकार–23×36/16। इसका प्रथम संस्करण 1993 ई. में प्रकाशित हुआ। इस भाग में जिज्ञासु जी के लघु ग्रन्थों का संग्रह था, जिसमें (क) स्वलिखित जीवन परिचय (ख) वेद वेदार्थ विवेचन (यजुर्वेद भाष्य विवरण की भूमिका) (ग) विवरण के द्वितीय संस्करण की विशेषताएँ (घ) वेद और निरुक्त (ङ) निरुक्तकार और वेद में इतिहास (च) देवापि और शन्तनु वैदिक आख्यान का वास्तविक स्वरूप–पुस्तकें संगृहीत थीं। **उपोद्घात–भूमिकाएँ**–इसके अन्तर्गत (क) काशिका का उपोद्घात (ख) प्रथमावृत्ति–भूमिका तथा प्राक्कथन (ग) सरलतम विधि–भूमिका (घ) आर्याभिविनय–भूमिका (ङ) सन्ध्योपासनविधि–भूमिका।

6. जिज्ञासु रचना मंजरी (द्वितीय भाग)

आकार–23×36/16, पृष्ठ सं. –620 पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु स्वसामयिक वेदविदों में अग्रगण्य थे। अतः स्वाभाविक था कि उन्हें आदर पूर्वक वेद सम्मेलनों के सभापतित्व के लिए आमंत्रित किया जाए। 'रचना मंजरी' के द्वितीय भाग में (क) वेद सम्मेलन लाहौर, (ख) आर्य विद्वत् सम्मेलन कलकत्ता (ग) वेद सम्मेलन, खुरजा (घ) वेद सम्मेलन, मेरठ के अध्यक्षीय भाषण पुनः मुद्रित किये गये हैं। एवंविध गम्भीर वेदविषयक विवेचन प्रायः दुर्लभ हैं। इसके अतिरिक्त गुरुजी के उपलब्ध 20 (बीस) निबन्धों का भी संकलन इसमें किया गया है।

सहायक सामग्री

1. **पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु जन्म–शताब्दी स्मारिका–14 अक्टूबर 1992 ई.। प्रकाशक–रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत–हरियाणा)।**
2. **विरजानन्द आश्रम शताब्दी – विशेषाङ्क (प्रथम भाग) नवम्बर 2021 ई., प्रकाशक–वेदवाणी कार्यालय, रेवली (सोनीपत–हरियाणा)**
3. **विरजानन्द आश्रम शताब्दी–विशेषाङ्क (द्वितीय भाग) दिसम्बर–जनवरी 2021–2022 ई., प्रकाशक–वेदवाणी कार्यालय, रेवली (सोनीपत–हरियाणा)।**
4. **'वेदवाणी' हीरक–जयन्ती विशेषाङ्क नवम्बर 2023 ई. प्रकाशक–वेदवाणी कार्यालय, रेवली (सोनीपत–हरियाणा)।**

अध्यापक आवास, स्टेशन रोड,
अमेठी (उ.प्र.)–227405

☞ पृष्ठ 03 का शेष

परमात्मा का अंश ...

उठती हैं और कुछ दूर जाकर फिर समुद्र में मिल जाती हैं। इसी प्रकार आत्मा परमात्मा से उत्पन्न होते और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। मुण्डकोपनिषत् में आता है–"जैसे बहती हुई नदियाँ अन्त में नाम रूप छोड़कर समुद्र में अस्त होती हैं। इसी प्रकार ज्ञानी नाम रूप छोड़कर परात्पर (परे से परे) दिव्य पुरुष {परमात्मा} को प्राप्त होता है। {**यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। मुण्डक 3.2.8**}

क्या सब आत्माओं का समूह परमात्मा ?–

यहाँ भी उपमा एकांगी है और इससे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। साधारणतया समुद्र एक बहुत बड़ा जलाशय है जिसमें जल के अनन्त बिन्दु हैं। इन्हीं बिन्दुओं से सागर बनता है। सागर इन बिन्दुओं के समुदाय के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि सारे जल बिन्दु सुखा दिए जायें तो समुद्र सूख जाएगा, और समुद्र नहीं रहेगा। सागर इन बिन्दुओं के समूह के सिवा कुछ भी नहीं है। यदि परमात्मा को ऐसा महासागर माना जाए जीव जिसके बिन्दु हैं, और इस उपमा को पूर्णरूपेण माना जाए तो इसका यह भाव होगा कि सब आत्माओं के समुदाय का नाम परमात्मा है, किन्तु यह एक असार सिद्धान्त है और कोई बुद्धिमान् इसे स्वीकार नहीं कर सकता। मुण्डकोपनिषत् का जो वचन हम ने उद्धृत किया है, उसका भी यह भाव नहीं है। समुद्र की उपमा तो केवल यह समझाने के लिए दी गई है कि नामरूपात्मक बाह्य बन्धन तब छूट जाते हैं जब जीव मुक्त हो जाता है। देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुमित्र आदि नामों का और मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट–पतंग आदि रूपों (आकारों) का आत्मा के साथ अस्थायी सम्बन्ध होता है। संसार मुझे मेरे नाम और रूप (आकार) से पहचानता और जानता है। लोग कहते हैं, 'उसका रूप ऐसा है, उसका नाम अमुक है।' यदि मेरे विशेष रूप और नाम न हों, तो संसार के लिए मैं समाप्त हूँ। किन्तु जिस रूप (आकार) से लोग मुझे पहचानते हैं, वह मेरा रूप नहीं, वरन् मेरे शरीर का है। मैं शरीर से पृथक् हूँ किन्तु मेरी पहचान नहीं की जा सकती। इस शरीर का मेरी सत्ता के साथ अभेद सम्बन्ध नहीं है। जिस नाम से संसार मुझे पुकारता है, वह तो संसार ने मुझे बुलाने के लिए दे रखा है। मैं अपनी इच्छा के अनुसार नाम बदल सकता हूँ किन्तु मैं वही बना रहूँगा। उपनिषत् का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार समुद्र में पड़कर नदियाँ अपना पृथक् नाम रूप छोड़ बैठती हैं, इसी प्रकार मुक्त जीव भी अपने समस्त सांसारिक बन्धन तोड़ देता है। **मुक्त आत्मा का अर्थ विनष्ट आत्मा या विलुप्त आत्मा नहीं है।** गंगा जो बंगाल की खाड़ी में जा मिली है, न नष्ट हुई है और न ही उसका सर्वथा अभाव ही हुआ है। वह तो वही है। जिन जल–बिन्दुओं से गंगा बनती है वे सब वही हैं। एक बूँद का भी अभाव नहीं हुआ। केवल नाम रूप का अभाव हुआ है। आप उस बहते प्रवाह को नहीं देख पाते और न ही 'गंगा' नाम पुकार सकते हैं। सागर में इसके स्वरूप का लय नहीं हुआ, वरन् इसके नाम रूप का विलय हुआ है। इस प्रकार जब मेरी मुक्ति होगी तो मेरी सत्ता का परमात्मा की सत्ता में विलय नहीं होगा। मुक्ति का अर्थ विनाश या सर्वथा अभावरूप होना नहीं हैं। मैं अपनी विशुद्ध वास्तविक दशा में बना रहता हूँ। मैंने केवल नाम रूप की गोदड़ी उतार फेंकी है। यह एक और विषय है जिसके लिए समुद्र और बूँद की उपमा कदाचित् सर्वश्रेष्ठ है। इससे परमात्मा के मुकाबले में आत्माओं की सापेक्ष नगण्यता समझाई जाती है। किन्तु इन उपमाओं का व्यवहार अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए। अंशांशिभाव का विचार तो कभी भी मन में नहीं लाना चाहिए। परमात्मा की निरवयवता–अखण्डता (भाग न हो सकना) और जीव की अखण्डता एवम् उनका परस्पर न जुड़ने का भाव अथवा एक दूसरे में सर्वथा विलीन न होने का भाव कभी भी नहीं भुलाना चाहिए। इस उपमा के प्रयोग के लिए हम ऋषियों को दोष नहीं दे सकते। यह सब से उत्तम थी जो उन्हें रिझा सकती थी, समुद्र के तट पर खड़ा हुआ मनुष्य उसकी विशालता से चकित हुए बिना नहीं रह सकता। वह समुद्र की सापेक्ष विशालता में उस महती विशालता की झलक देखता है, जो उसके मन के सामने है। भूल इस विचार की अशुद्ध विवेचना और इस अशुद्ध विवेचना के आधार पर स्थापित विचित्र वादों में है।

सम्पादक–प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
'गंगा ज्ञान सागर' (दूसरा भाग) से साभार

☞ पृष्ठ 05 का शेष

मानव-निर्माण में वैदिक मूल्यों का ...

वर्गों की सन्धि से एक अभिन्न अक्षर उत्पन्न होता है। वैसे आचार्य, शिष्य, विद्या, प्रवचन की महासंधि से ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है। परस्पर मिले हुए पदार्थों का विभाग के साथ अवयव सम्बन्ध का ज्ञान ही मुख्य ज्ञान है और उसी ज्ञान से संसार के परमार्थ सुख की सिद्धि होती है और यही ज्ञान शिक्षा का पूर्ण रूप है। इसलिए परस्पर का ज्ञान करना चाहिए। बालक को केन्द्रीभूत रखकर अनेक योजनाओं का निर्माण करने में ऋषि मुनि लोग लगे रहते थे। प्रकृति के साथ सम्पर्क जिसका निर्देशन **"उपह्वरे गिराणाथंसङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रऽअजायत।"** ऋग्वेद 5.8.14 मंत्र द्वारा मिलती है। एकान्त स्थान सुरम्य वातावरण मस्तिष्क को शुद्ध विचारों से अनुप्राणित कर सकते हैं। दूसरी तरफ कुल की भावना पर विशेष जोर दिया जाता था। पहले माता–पिता के कुल में, फिर गुरु के कुल में, फिर समाज के कुल में। मूल सिद्धान्त कुल का है, परिवार का है। तीसरी भावना, सामाजिक पर्यावरण समानता की भावना, जो वैदिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। सब लोग परस्पर ऊँच–नीच के भाव को छोड़कर गरीबी एवं अमीरी के भेदभाव को त्याग कर, समानता को आधार बनाकर परस्पर गुरु–शिष्य के तादात्म्य सम्बन्ध को प्रकट करते थे। जिसका निर्देशन अथर्ववेद के काण्ड 11 मंत्र 3 में मिलता है–

आचार्य उपनयमानो
ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं
जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

अर्थात् बालक को शिक्षा देने के लिए आचार्य उसे अपने गर्भ में सुरक्षित सँभालकर रखता है, जैसे माता अपने बच्चे को गर्भ में सुरक्षित रखती है। क्या गुरु के सम्बन्ध का इससे ऊँचा चित्र खींचा जा सकता है? गुरु तथा शिष्य के निकटतम सम्बन्ध को समझाने के लिए माता तथा गर्भ के सम्बन्ध से अधिक सुन्दर उपमा क्या दी जा सकती है? मन्त्रस्थ कुछेक शब्दों पर विचार करना आवश्यक है। यहाँ गर्भ शब्द का अर्थ आकर्षण व प्रभाव से है। आशय यह है कि आचार्य या अध्यापक अपने विद्यादि गुणों से बालक को आकर्षित करने वाला हो। 'उदर' शब्द से आचार्य का आश्रय अर्थ करना ही समुचित है। विद्यालय ऐसे सुरक्षित सुप्रबन्ध में हो, जिसमें रहते हुए बालक सांसारिक बुराई से बचकर पूर्ण विकास को प्राप्त कर सके। जैसे माता के उदर में बालक विकसित होता है और बाहर के कष्टों से बचा रहता है। तद्वत् बालक भी अपने विकास करने में ही लगा रहे। बाह्य कुचेष्टाओं से बचता रहे। क्या आज भी यह आदर्श प्रासंगिक नहीं है। विद्या के साथ–साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास भी आवश्यक है, जिसका संकेत मंत्रस्थ 'उदर' शब्द से ज्ञात होता है। **'तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति'** क्या तीन रातों में ही बालक को पूर्णतः विकसित किया जा सकता है? मंत्रस्थ रात्रि शब्द का अर्थ वह अंधकारमय रात्रि नहीं, अपितु यौगिकार्थ द्वारा **'राति सुखं ददातीति या सा रात्रिः'** रा दाने धातु से रात्रि शब्द बनता है, जो सुख देने वाली है, इसे रात्रि कहते हैं। तीन रात्रियों से तात्पर्य है (1) ईश्वर, जीव, प्रकृति संबंधिनी तीन प्रकार की विद्याएँ ही वास्तविक तीन रात्रियाँ हैं, जो कि यथार्थ में सुखदात्री हैं। चारों वेदों में ऋच् यजु व साम भेदात्मक तीन ही प्रकार के मंत्र हैं। अतः त्रिविध मंत्र ही तीन रात्रियाँ हैं। चारों वेदों के मूल विषय ज्ञान, कर्म, उपासना को जानना ही योग्य है। तीन सवन प्रातः, सायं, मध्याह्न ही ब्रह्मचारी को शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास को प्राप्त कराते हैं। वसु, रुद्र व आदित्य–ये तीन उपाधियाँ ही तीन रात्रियाँ हैं। इस प्रकार के सर्व निष्णात बालक को देखने के लिए **'द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः'** देवगण भी उसका समाज में आदर सत्कार करते थे।

क्रमशः

खालसा महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

☞ पृष्ठ 02 का शेष

प्रभु-भक्ति

पूज्य विद्वान्गण सभी मुझे एक–समान ही उपदेश करते रहे हैं कि निश्चय से वह वरुण सर्वश्रेष्ठ प्रभु ही तुझपर रुष्ट है।"

तुझ तक कैसे पहुँचूँ!

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं
यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम्।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव
त्वानेना नमसा तुर इयाम्।।

(ऋ. मं. 7, सू. 86, मं. 4)

"हे वरुण सर्वश्रेष्ठ प्रभो! वह क्या अपराध है जिसके कारण अपने बड़े–से–बड़े उत्तम स्तुतिकर्ता, स्नेही मित्र को भी दण्ड–सा देना चाहता है? हे दुर्लभ! मुझे वह उपाय बतला जिससे निष्पाप होकर भक्ति–भाव से विनीत होकर अतिशीघ्र चलकर तुझ तक पहुँच जाऊँ।"

तुम्हारी रक्षा में भगवान् !

न तमहो न दुरितं कुतश्चन
नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे
यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते।।

(ऋ. 2–23–5)

"उसको न किसी ओर से शोक प्राप्त होते हैं न दुःख, न उसको शत्रु दबाते हैं न वंचक। सारे बहकानेवालों को उस जन से परे हटाते रहते हो, जिसके रक्षक बनके हे प्रभो, तुम स्वयं रक्षा करते हो।"

ले चल भगवान् वहाँ !

यत्र आनन्दाश्च मोदाश्च
मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र
माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव।।

(ऋ. 9–113–11)

"जहाँ आनन्द–मोद बने रहते हैं, जहाँ मन की सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं वहाँ मुझे अमृत बना, हे भगवान्, वहाँ मुझे ले चल।"

मुझे मस्ताना बना दे !

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनुशोचतु।।

(अथर्व. 6–130–4)

"ऐ वायुओ ! मुझे मस्ताना बना दो। ओ आकाश! मुझे बेसुध कर दे। अग्ने! तू भी मुझे प्रेमोन्मत्त कर दे। हाँ, वह (प्रभु) भी मेरे लिए विकल हो जाये!"

प्रतीक्षाकाल

अधीर हो उठनेवाले भक्त एक बात याद रक्खें और वह यह कि भगवान् के दर्शकों में यदि देर हो रही है तो इसके लिए बहुत घबराने की आवश्यकता नहीं। कितने ही भक्त जब इस मार्ग पर चलना प्रारम्भ करते हैं तो कुछ काल के पश्चात् ऊब से जाते हैं। वे यह कहना शुरु कर देते हैं–कुछ पल्ले नहीं पड़ा, कुछ भी तो प्राप्त नहीं हो रहा। पहले तो मन ही नहीं टिकता था, यही नाना प्रकार के नाच नचाता रहता था; अब इसका नाच कुछ कम हुआ है तो आगे कुछ भी तो दिखाई नहीं देता–ऐसा कहनेवाले भक्त के लिए ही यह कहना है कि घबराये नहीं, भगवान् अभी आपको इसी अवस्था में रखना उचित समझता है। इसी अवस्था में रहने से आपका कल्याण है, और फिर यह अवस्था कोई ऐसी बुरी भी नहीं कि इसे त्याग दिया जाए। यह काल प्रतीक्षा–काल कहलाता है। निस्सन्देह, इसमें बहुत सन्तोष और धैर्य की आवश्यकता है, परन्तु एक सच्चा प्रेमी तो मिलाप की अपेक्षा इस प्रतीक्षा में अधिक आनन्द अनुभव करता है। एक उर्दू कवि ने क्या अच्छा कहा है–

वस्ल[1] में हिज्र[2] का ग़म,
हिज्र में मिलने की खुशी।
कौन कहता है जुदाई
से विसाल अच्छा है ?

{1. प्रियतम–मिलन 2. बिछुड़ना}

क्यों जी ! जब श्री राम ने वन को चले जाना था, तब राम घर में ही थे और जब अन्तिम रात आ पहुँची थीं, तब अयोध्यावासी प्रसन्न थे या जब राम अयोध्या से दूर वन में थे और वनवास की घड़ियाँ दिन–प्रतिदिन समाप्त होती चली जा रही थीं, तब खुश थे। पहली अवस्था मिलाप की है, परन्तु लोग अधीर थे। दूसरी अवस्था विछोह की है, परन्तु लोग प्रसन्न हो रहे थे। यह एक सांसारिक प्रेम की उपमा है। इसी प्रकार प्रभु–मिलन की प्रतीक्षा के समय को भी आनन्ददायक समझना चाहिए। यही वह समय होता है जब भक्त नित्य–नये चाव से अपने मन–मन्दिर को साफ करता है, अश्रुधारा बहाकर मन–मन्दिर के फर्श को धोता है, उसके मार्ग पर अश्रुजल से ही छिड़काव करता है– "मेरे प्रियतम अवश्य आयेंगे। आज तो विशेष यत्न से मन–मन्दिर की सजावट करनी होगी। दिनभर, रात्रिभर, श्रद्धा–प्रेम और भक्ति के पुष्पों की माला लिये मार्ग देखना होगा। अभी आये कि अभी आये ! अभी द्वार खुला कि खुला !" कितनी बार भक्त कोई आहट पाकर, प्रकाश की ज्योति का कोई चिह्न पाकर बहुत प्रसन्न हो जाता है–"वे आ गए ! वे फाटक खुल गए !" परन्तु फिर प्रतीक्षा प्रारम्भ हो जाती है और इसी प्रकार कितनी रातें, कितने दिन, कितनी बरसातें, कितनी सदियाँ बीत जाती हैं। भक्त बैठा है, वृत्ति टिकाए हुए। उसे अब इसी अवस्था में आनन्द आने लगता है। प्रातः से सायं, सायं से प्रातः होता है और भक्त उसी प्रकार नित्य मन–मन्दिर को सजाता है, धोता है और 'किसी' के आने की प्रतीक्षा करता है। भक्त इस प्रतीक्षा में घबराता नहीं। वह तो दृढ़ता से नित्य प्रति मन–मन्दिर में बैठकर उसका द्वार खटखटाता ही चला जाता है और कहता है–

बैठे हैं तेरे दर[1] पे तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल[2] ही मिलेगा या मरके उठेंगे।।

{1. द्वार 2. मिलाप}

परन्तु इस मार्ग में मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती, मिलाप हो ही जाता है–आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। अतएव भक्त को यदि जल्दी मिलाप नहीं होता तो उसे घबराना नहीं चाहिए। इस प्रतीक्षा–काल में श्रद्धा की मात्रा बढ़ाते ही चले जाना चाहिए, संशय को निकट नहीं आने देना चाहिए। इसके साथ ही एक दूसरी बात भी सम्मुख रखनी चाहिए और वह यह कि अधीर हो उठने अथवा ऊब जाने से तो काम नहीं बना करता। जब किसान बीज बोता है तो क्या वह इसका फल तत्काल पा लेता है ? नहीं, उसे प्रतीक्षा करनी होती है। कितने ही दिन, कितने ही महीने वह प्रतीक्षा में व्यतीत करता है। कभी आकाश की ओर दृष्टि लगाये वर्षा की प्रार्थना करता है, कभी तूफान से बचने की प्रार्थना करता है और फिर भी प्रतीक्षा करता है। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण 'ऐपक टिटस' फिलॉसफर ने दिया है, जिसका वर्णन श्री लाला दीवानचन्द जी एम. ए., प्रिंसिपल दयानन्द कॉलेज, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'जीवन–रहस्य' में किया है। 'ऐपक टिटस' कहता है–"कोई बड़ी वस्तु तत्काल पूर्णता को नहीं पहुँचती। एक मामूली अंगूर के गुच्छे या अंजीर के पकने के लिए भी समय की आवश्यकता होती है। यदि तुम मुझे कहो कि इसी समय तुम्हें अंजीर दे दूँ तो मैं कहूँगा कि इसके लिए समय चाहिए। पहले वृक्ष पर फूल खिलने दो, तब फल लगेंगे और फिर पकेंगे। जब एक अंजीर तत्काल पककर तैयार नहीं हो सकती तो मनुष्य के मन का फल तुम थोड़े–से काल में कैसे प्राप्त कर सकते हो ?" मन के बनाने में जब आप लग गए हैं तो इसका फल शीघ्र ही मत चाहो–लगे रहो – समय बीतने दो, अच्छे किसान की तरह पूरी निगहबानी करो और तब फल भी मिल ही जायेगा।

क्रमशः

☞ पृष्ठ 04 का शेष

गीता और महर्षि ...

है कि ऋषि ने इन वचनों के उस अर्थ को कहा है कि 'यह बात ठीक नहीं' जो अर्थ इनका प्रश्नकर्त्ता ने समझा है। वह अर्थ ही वेद विरुद्ध है और जिस बात को प्रश्नकर्त्ता उस अर्थ से लेना चाहता है उसी का ऋषि ने वेद में निषेध बताया है। अतः स्पष्ट है कि– यहाँ ऋषि ने गीता को अमान्य नहीं कहा है। अपितु तीनों प्रमाणों और तीनों ग्रन्थों को मान्य कोटि ही में रहने दिया है।

नोट– अर्थ तीनों का इसी प्रकार है न च पुनरावर्तते, अनावृत्तिः, शब्दात्, यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तीनों वचनों में एक ही ध्वनि निकलती है कि–जब तक मुक्ति की अवधि है तब तक मुक्त जीव वापिस नहीं आता है।

'ऋषि के पत्र और विज्ञापन' में–

(27) श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन नामक ग्रन्थ में पृष्ठ 404 पर मुन्शी समर्थदान के लिए फाल्गुन शुक्ल 9 सं. 1939 विक्रमी सं. (ऋषि के देहावसान से लगभग 8 मास पूर्व) के लिखे पत्र में ऋषि ने सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते।। गीता 2–34 यह श्लोकार्थ लिखा है, इसका अर्थ यह है कि– प्रतिष्ठा वाले मनुष्य की अकीर्त्ति मृत्यु से भी अधिक है।

(28) इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 413 पर एक विज्ञापन में ऋषि ने फिर इसी श्लोकार्थ को लिखा है–

'सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते।।'

–गीता 2.34

(29) इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 442 पर ऋषि का श्री रावराजा तेजसिंह जी जोधपुर को वैशाख शुक्ल 13 सोमवार संवत् 1940 को शाहपुरा से लिखा हुआ (ऋषि के देहावसान से लगभग 5।। माह पहिले) पत्र छपा है उसमें ऋषि ने गीता का यह श्लोक लिखा है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।।

– गीता 3–21

अर्थ–श्रेष्ठ पुरुष जिस–जिस आचरण को करता है इतरजन (पीछे चलने वाला छोटा भी) उसी उसी आचरण को करता है, लोक उसी के अनुसार वर्त्तता है वैसा ही व्यवहार करता है।

क्रमशः

शास्त्रार्थ–महारथी अमर स्वामी ग्रन्थ संग्रह' में संकलित 'गीता और महर्षि दयानन्द' से साभार

पत्र/कविता

आर्य वीरों की भावनायें

आर्य राष्ट्र निर्माण करेंगे, हम अपने बलिदानों से।
गूंज उठेंगे अवनि अम्बर, साम वेद के गानों से।।
दबी पड़ी है अपनी संस्कृति भारत के प्राचीरों में।
छुपा हुआ वीरत्व सो रहा, भारतीय वर वीरों में।।
कला और विज्ञान हमारे, छुपे हुए हैं टीलों में।
सुप्त पड़ी हैं सैन्य शक्तियां, राजपूत और भीलों में।।
नव जीवन हम देंगे इनको अपने प्रबल विधानों से।। 1।।

इस छाती पर झेला हमने, है ईरानी तीरों को।
किया पराजित कई बार, हमने यूनानी वीरों को।।
बार बार कुंठित कर डाला, हूणों की शमशीरों को ।
मुंह की खानी पड़ी सदा ही, शक जैसे रणधीरों को।।
विजय प्राप्त की कन्यायें ली हमने रिपु बलवानों से।। 2।।

आर्य वीर बन जो प्रण ठाना, उसको पूर्ण करेंगे हम।
करे कोई अवरुद्ध मार्ग में, किंचित नहीं डरेंगे हम।।
देश विदेशों में भारत का, उज्वल भाल करेंगे हम।
भारत मां की विपदा सारी, देकर शीश हरेंगे हम।।
श्रुति संस्कृति सर सरसायेंगे खेल खेलकर प्राणों से।। 3।।

अमर स्वामी जी महाराज
'अमर स्वामी विरचित चुनिन्दाँ भजनों (और गीतों) का लघु संकलन' से साभार

मनुस्मृति का उल्लेख करने में संकोच क्यों? भारतीय न्याय-परंपरा पर संतुलित विमर्श

भारत की बौद्धिक परंपरा अत्यंत प्राचीन, व्यापक और बहुस्तरीय रही है। वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, धर्मसूत्र, अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र और नीतिशास्त्र इन सबने मिलकर भारतीय समाज, शासन, कर्तव्य, दंड और न्याय की अवधारणा को आकार दिया। इसी समृद्ध परंपरा में मनुस्मृति का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मन में यह प्रश्न उठा कि जब हम भारतीय legal system की प्राचीनता पर गर्व करते हैं, तो मनुस्मृति जैसे ग्रंथों पर संतुलित चर्चा करने में संकोच क्यों करते हैं?

आज यह संकोच केवल किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं है। न्यायपालिका, राजनीति, शिक्षा–जगत्, सामाजिक सुधार आंदोलनों और सार्वजनिक विमर्श से जुड़े अनेक प्रबुद्ध लोग मनुस्मृति का नाम लेते हुए असहज दिखाई देते हैं। परिणाम यह होता है कि एक गंभीर ऐतिहासिक और बौद्धिक विमर्श या तो दब जाता है, या फिर नारेबाजी और राजनीतिक आरोप–प्रत्यारोप का विषय बन जाता है।

प्रश्न यह है कि क्या किसी ग्रंथ के विवादित अंशों के कारण उसके ऐतिहासिक और विधि–संबंधी महत्व पर चर्चा ही बंद कर दी जानी चाहिए? क्या किसी प्राचीन ग्रंथ का उल्लेख करना उसके हर विचार का समर्थन करना है? मेरे विचार से ऐसा नहीं है। किसी ग्रंथ का अध्ययन, उसका विश्लेषण और उसका ऐतिहासिक संदर्भ समझना और उसे पूर्णतः स्वीकार कर लेना इन दोनों में बहुत अंतर है।

मनुस्मृति को भारतीय न्याय और सामाजिक व्यवस्था से जुड़े प्राचीन ग्रंथों में गिना जाता है। इसमें शासन, दंड, राजा के कर्तव्य, सामाजिक अनुशासन, उत्तरदायित्व, नैतिकता और विधि–व्यवस्था से जुड़े अनेक विषय मिलते हैं। इस दृष्टि से यह केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय विधि–चिंतन और सामाजिक संगठन का एक ऐतिहासिक दस्तावेज भी है।

हाँ, मनुस्मृति में अनेक ऐसे अंश मिलते हैं जिन पर गंभीर आपत्ति उठती रही है, विशेषकर जाति, स्त्री, सामाजिक असमानता और दंड–व्यवस्था से जुड़े कुछ प्रकरणों पर। यह भी स्वीकार करना चाहिए कि समय के साथ मनुस्मृति सहित अनेक प्राचीन ग्रंथों में प्रक्षेप, मिलावट और कालगत परिवर्तन हुए हैं। इसलिए मनुस्मृति को आँख बंद करके स्वीकार करना भी उचित नहीं है, और केवल राजनीतिक पूर्वाग्रह से पूरी तरह खारिज कर देना भी बौद्धिक ईमानदारी नहीं है।

समस्या तब पैदा होती है जब मनुस्मृति को या तो पूर्णतः पवित्र और अंतिम सत्य मान लिया जाता है, या पूर्णतः विषैला और त्याज्य ग्रंथ घोषित कर दिया जाता है। दोनों दृष्टियाँ अतिवादी हैं। किसी भी प्राचीन ग्रंथ को पढ़ने का सही तरीका यह है कि उसमें से युगानुकूल, न्यायसंगत, नैतिक और मानव–कल्याणकारी तत्वों को समझा जाए, और जो बातें आज के संविधान, समानता, मानव गरिमा और आधुनिक न्यायबोध के विरुद्ध हैं, उन्हें स्पष्ट रूप से अस्वीकार किया जाए।

भारत की न्याय–परंपरा केवल मनुस्मृति तक सीमित नहीं है। याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, महाभारत का शांति पर्व, बौद्ध–जैन परंपराएँ और लोकाचार सभी ने भारतीय विधि–चिंतन को समृद्ध किया है। इसलिए मनुस्मृति को भारतीय न्याय–व्यवस्था का एक प्राचीन स्रोत कहना उचित है, पर उसे अकेला या अंतिम स्रोत मानना उचित नहीं होगा।

आज आवश्यकता यह है कि हम मनुस्मृति पर चर्चा से भागें नहीं, बल्कि उसे ऐतिहासिक, आलोचनात्मक और संवैधानिक दृष्टि से पढ़ें। जिन अंशों में राजधर्म, दंडनीति, सामाजिक उत्तरदायित्व, कर्तव्य और व्यवस्था की बात है, उन्हें अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है। जिन अंशों में असमानता, भेदभाव या अमानवीय दृष्टिकोण दिखाई देता है, उन्हें स्पष्ट रूप से अस्वीकार करना चाहिए।

वैदिक चिंतन की शक्ति यही रही है कि उसने विचार को बंद नहीं किया, बल्कि मंथन किया। संकोच तो तब होना चाहिए जब हम बिना पढ़े, बिना समझे और बिना संदर्भ जाने किसी ग्रंथ पर अंतिम निर्णय सुना दें।

सही दृष्टिकोण यह हो सकता है कि मनुस्मृति को न अंध–स्वीकार किया जाए, न अंध–नकार। उसे भारतीय विधि–चिंतन के एक प्राचीन ग्रंथ के रूप में पढ़ा जाए, पर आधुनिक संवैधानिक मूल्यों न्याय, समानता, स्वतंत्रता और मानव गरिमा की कसौटी पर परखा जाए।

अपनी विरासत से डरने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है, विवेक, अध्ययन, साहस और संतुलन की। प्राचीन ग्रंथों पर संवाद होना चाहिए, पर वह संवाद न तो दुराग्रहपूर्ण हो और न ही आत्महीनता से भरा हुआ। यही भारतीय परंपरा की वास्तविक बौद्धिक गरिमा है।

डॉ. कीर्ति शर्मा
प्रधान आर्यसमाज, करोल बाग
मो. 987127722

सोहन लाल डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय, अम्बाला शहर में राष्ट्रीय ऑनलाइन सेमिनार

सोहन लाल डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय, अम्बाला शहर द्वारा **"शिक्षक शिक्षा में *ए.आई.* आधारित शिक्षण पद्धतियाँ और स्मार्ट कक्षाओं हेतु भावी शिक्षकों की तैयारी"** विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय ऑनलाइन सेमिनार का आयोजन किया गया।

मुख्य वक्ता के रूप में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के आई.टी.एच.एस. विभाग की प्रोफेसर डॉ. अनीता रानी दुआ ने शिक्षक शिक्षा में ***आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस*** की बढ़ती भूमिका, शोध की नई संभावनाओं तथा डिजिटल शिक्षण के विकसित हो रहे आयामों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला।

सेमिनार का मुख्य उद्देश्य शिक्षक शिक्षा में **कृत्रिम बुद्धिमत्ता** आधारित शिक्षण पद्धतियों की उपयोगिता, नवाचार एवं भविष्य की संभावनाओं पर विचार–विमर्श करना था।

सेमिनार में देश के दूर–दराज क्षेत्रों एवं विभिन्न राज्यों से लगभग 80 प्रतिभागियों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता की तथा अपने शोध–पत्र प्रस्तुत किए।

प्राचार्या डॉ. अलका शर्मा ने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में स्मार्ट शिक्षण तकनीकों एवं *ए.आई.* की उपयोगिता पर अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. सरिता कौशिक ने डिजिटल युग में शिक्षक की बदलती भूमिका तथा तकनीकी दक्षता के महत्व को रेखांकित किया। डॉ. गीता कौशिक ने ए.आई. आधारित शिक्षण विधियों एवं विद्यार्थियों की अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की। प्राचार्या डॉ. पूजा ने सभी प्रतिभागियों का धन्यवाद किया।

आर्यसमाज दाल बाज़ार लुधियाना में विश्व यज्ञ दिवस

आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना में यज्ञ दिवस पर विशेष यज्ञ किया गया। इस अवसर पर हिमांशु कुमार जी, सोनम जी, एडवोकेट गौरव अरोड़ा जी, रूबी अरोड़ा जी तथा मास्टर दिनेश महाजन जी ने बहुत सुंदर भजन सुनाये। कपिल नारंग जी ने सत्यार्थ प्रकाश का पाठ किया।

पंडित राजेंद्रव्रत जी शास्त्री जी ने यज्ञ दिवस पर शुभकामनायें देते हुए यज्ञ के महत्व को रेखांकित किया

अनिल जी परिवार के साथ यजमान के रूप में उपस्थित हुए।

पंडित राजेंद्रव्रत जी शास्त्री ने ब्रह्मा की भूमिका निभाते हुए वेद मंत्रों के साथ यज्ञ सम्पन्न करवाया।

शिवाय ने मंच पर गायत्री महामंत्र का जाप किया। सोनम जी ने और और आर्यजनों को अपना जीवन यज्ञमय बनाने की प्रेरणा दी। यज्ञ को विश्व स्तर पर मिली स्वीकृति को भारत की एक महान् उपलब्धि बताया।

अंत में शान्ति पाठ के साथ साप्ताहिक सत्संग कि कार्यवाही सम्पन्न हुई।

डी.ए.वी. जाखल में 'सुखमणि' साहब का पाठ

बृज लाल जिंदल डीएवी पब्लिक स्कूल जाखल मंडी में स्कूल की सुख–शांति के लिए सुखमनी साहिब का पाठ आयोजित किया गया।

प्राचार्य ने बताया कि नए शैक्षणिक सत्र की शुरुआत या विशेष अवसरों किया और कहा–हमारा उद्देश्य छात्रों की आध्यात्मिक और मानसिक शांति सहित करुणा और एकाग्रता को बढ़ावा देना है। यह मन को सुकून देता है और सकारात्मक ऊर्जा लाता है।

बाबा राजेंद्र सिंह ने जयदेव शब्द की व्याख्या करते हुए बताया कि

पर सुखमनी साहिब का पाठ एक इस संस्था की पवित्र परंपरा है, जिसका उद्देश्य छात्रों, शिक्षकों और कर्मचारियों को मानसिक शांति, सकारात्मकता और ईश्वर का आशीर्वाद प्रदान करना है।

प्राचार्य जयदेव शर्मा ने बाबा राजेंद्र सिंह एवं बाबा कृष्ण सिंह सहित आए हुए सभी अतिथियों का स्वागत

"जयदेव" का अर्थ "ईश्वर की विजय" या "दिव्य जीत" है। भगत जयदेव एक प्रसिद्ध संत थे जिनका नाम गुरु ग्रंथ साहिब में आता है। बाबा राजेन्द्र सिंह ने कहा कि प्रार्थना अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए ऊर्जा और सकारात्मकता देती है। गणमान्य व्यक्तियों ने आयोजन की सराहना की।

आर्य समाज मानव सेवा के 150 स्वर्णिम वर्ष

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश द्वारा चरित्र निर्माण व आत्मरक्षण प्रशिक्षण शिविर का हुआ उद्घाटन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा व आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के संयुक्त तत्वावधान में आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश द्वारा चरित्र निर्माण व आत्मरक्षण प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन समारोह प्रादेशिक सभा के प्रधान पद्मश्री पूनम सूरी जी, सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री सुरेंद्र कुमार आर्य व दिल्ली प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री धर्मपाल आर्य जी के आशीर्वाद से तथा श्री बृहस्पति आर्य जी के नेतृत्व में हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग में आरंभ हुआ।

इस उद्घाटन समारोह में समाज सेवी श्री ठाकुर विक्रम सिंह जी, श्री सत्यानंद आर्य, सार्वदेशिक आर्य वीर दल के सेनापति आचार्य नंद किशोर, आर्य नेता सुरेंद्र रैली, जोगेंद्र खट्टर, सत्यानंद आर्य, विवेक आर्य, रविदेव, राकेश आर्य उपस्थित हुए। श्री जयदेव जी ने सभी का आभार व्यक्त किया।

वक्ताओं ने शिविरार्थियों को उत्साह से प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

श्री बृहस्पति आर्य ने बताया कि इस शिविर में आर्य वीरों को आत्मरक्षा के साथ–साथ चारित्रिक व आत्मिक उन्नति का प्रशिक्षण भी दिया जाएगा तथा व्यक्तित्व की उन्नति एवं नैतिक मूल्यों के आधार पर जीवन को जीने की शिक्षा दी जाएगी। शिविर की सफलता के लिए सभी ने शुभकामनाएं प्रदान कीं।

शिविर का दीक्षांत समारोह 31 मई, रविवार सांय 5:00 बजे होगा।

डी.ए.वी. अम्बोटा में महात्मा हंसराज जयन्ती

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल अम्बोटा में महान् त्यागी महात्मा हंसराज जी की जयंती पर यज्ञ का आयोजन किया गया।

यज्ञ का प्रारंभ वैदिक संध्या के साथ किया गया, जिससे पूरे विद्यालय के प्रांगण में पवित्रता और सकारात्मक ऊर्जा का प्रसार हुआ। विद्यार्थियों द्वारा आर्यसमाज के सुन्दर भजनों की प्रस्तुति दी गई।

विद्यालय के प्रधानाचार्य नमित शर्मा ने इस अवसर की महत्ता पर बोलते हुए कहा कि महात्मा हंसराज जी ने जीवन भर स्वामी दयानंद सरस्वती जी के आदर्शों का अनुसरण किया और उन्हें आत्मसात किया। श्री शर्मा ने कहा कि यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि आत्मशुद्धि, सकारात्मक ऊर्जा और सामूहिक कल्याण का प्रतीक है। जीवन में अनुशासन, परिश्रम और लक्ष्य के प्रति अटूट समर्पण के महत्व को समझाते हुए उन्होंने कहा कि दृढ़ निश्चय और निरंतर प्रयास के साथ आगे बढ़ने वाला विद्यार्थी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर सकता है। शिक्षकों को प्रेरित करते हुए कहा कि वे अपने जीवन में उच्च लक्ष्य निर्धारित करें।

सभी ने सामूहिक रूप से संकल्प लिया कि वे महात्मा हंसराज जी के जीवन से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ेंगे तथा विद्यालय की प्रतिष्ठा को नई ऊँचाइयों तक ले जाएंगे। कार्यक्रम का समापन शांति पाठ से किया गया।

बी.आर. डी.ए.वी. बेगूसराय में परिचय समारोह एवं विशेष यज्ञ

बी.आर. डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बेगूसराय में नवप्रविष्ट नर्सरी कक्षा के विद्यार्थियों हेतु परिचय समारोह का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम का उद्देश्य नन्हें विद्यार्थियों

एवं उनके अभिभावकों को विद्यालयी वातावरण, मातृ स्वरूपा शिक्षिकाओं तथा शिक्षण पद्धति से परिचित कराना था।

कार्यक्रम का शुभारंभ गायत्री मंत्रोच्चार से हुआ। तत्पश्चात् संगीत शिक्षिका तथा छात्र–छात्राओं द्वारा आर्य समाज का एक सुंदर व मधुर भजन प्रस्तुत किया गया।

एक विशेष हवन का आयोजन किया गया, जिसके मुख्य यजमान विद्यालय के प्राचार्य श्री नीरज कुमार सिंह थे।

प्राचार्य तथा प्राथमिक अनुभाग की शिक्षिकाओं ने हवन स्थल पर उपस्थित नन्हें विद्यार्थियों के ऊपर पुष्प वृष्टि कर उन्हें आशीर्वाद दिया।

प्राचार्य श्री नीरज कुमार सिंह ने अपने संबोधन में कहा कि आज का यह दिन इन छोटे बच्चों के लिए अत्यंत विशेष है। अभिभावकों को विश्वास दिलाते हैं के हम इन बच्चों को केवल शिक्षा ही नहीं अपितु अच्छे संस्कार एवं नैतिक मूल्यों की भी शिक्षा देंगे।

प्राथमिक अनुभाग की प्रभारी शिक्षका ने अभिभावकों को नर्सरी कक्षा की सभी अध्यापिकाओं से परिचित करवाया।

धन्यवाद ज्ञापनोपरांत शांतिपाठ के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**